

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180375

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—901—26-3-70—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. 7183/725K Accession No. 6.11-14

Author जिनेंद्र कुमार

Title कल्याण 10/11

This book should be returned on or before the date last marked below

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज़

कल्याणी

(सामाजिक उपन्यास)

लेखक

श्री जैनेन्द्र कुमार

प्रकाशक

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
गिरगाँव, बम्बई

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी
हिन्दी-ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, गिरगांव, बम्बई

प्रथमावृत्ति
अप्रैल १९४०

मूल्य दो रुपया

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६ केळेवाडी, गिरगांव,
बम्बई नं० ४

प्रारम्भिक

जिन वकील साहबकी यह कहानी है उनका नाम देनेका अनुरोध न किया जाय । हो सकता है कि पाठकोमेंसे बहुतेरे उन्हें जानते हों । तब कल्याणीके बारेमें भी वे अनुमान लगानेको उत्सुक होंगे । यह इष्ट नहीं है । कहनेकी आवश्यकता नहीं कि पुस्तकमें पात्रोंके नाम बदलकर दिये गए हैं । जैसे, कल्याणी कल्याणी नहीं है । उसी तरह कुछ दूसरे व्यौरोंको भी बदलना पड़ा है । शेष यह कहानी वकील साहबके एक रजिस्टरमें जैसी लिखी पाई गई लगभग वैसी ही दी गई है ।

अन्तिम उपसंहारवाला अंश रजिस्टरमें स्याहीके बजाय पेसिलका लिखा हुआ मिला । मालूम होता है कि समाप्ति की ओर उनका धैर्य टूट गया था और झुल्लाहटमें उन्होंने उपसंहार द्वारा कथाका अन्त किया ।

लेखक वकील साहबको जानता था । इन पन्नोंमें वर्णित ‘ कल्याणी ’ के बारेमें भी उन्हींके मुखसे उसने सुना था । पर यह वह संभव न मानता था कि वकील साहबके कागजोंमें वह कहानी लिखी तक मिल जायगी । उनके स्वभावको देखते हुए लेखक इसको बहुत अनहोनी बात गिनता है । शायद

कहानी लिखकर उसे वह भूल भी गये । निश्चय निजी याददाश्त से अधिक इसके उपयोगकी उन्हें कल्पना न होगी । तभी तो जाने कबकी कहानी आज अब आकर कहीं प्रकाशमें आ रही है ।

प्रस्तुत लेखक पाठकसे क्षमा माँगना चाहता है कि उसने कथाके कुछ दिलचस्प, पर अपनी समझसे अनावश्यक, अंश कम भी कर दिये हैं । स्व० वकील मित्रके प्रति लेखक कृतज्ञ और क्षमाप्रार्थी है ।

लेखक

कल्याणी

१

जब कभी उधरसे निकलता हूँ, मन उदास हो आता है । कोशिश तो करता हूँ कि फिर उधर जाऊँ ही क्यों । लेकिन बेकार । सच बात यह है कि अगर मैं इस तरह एक एक राह मूँदता चढ़ूँ तो फिर खुली रहनेके लिए दिशा किधर और कौन शेष रह जायगी । यों सब रुक जायगा । पर रुकना नाम ज़िंदगीका नहीं है । ज़िंदगी नाम चलनेका है ।

देखता हूँ कि दुनिया दुनिया रहती है । कोई उठ जाता है तो उसके अभावमें ठहरनेका अवकाश उसे नहीं । उसे खुद अपना चक्र है । इससे दुनियामें उदास होना ग़लत है । पर चित्त पूरी तरह बसमें जो नहीं होता । वह कभी एकदम बेबस हो जाता है । तब बीती बातें याद आती हैं । यह जानकर भी कि वे बातें बीती हैं, क्या उन्हें एकदम टालते बनता है ?

यही मकान था । ऐसे कोई बहुत ज्यादा दिनोंकी बात नहीं है । महीना हुआ होगा ।—कुछ कम या दो एक दिन ऊपर, कि इस मकानकी जो शोभा थी,—श्री थी, वे एकाएक मर गईं । जब यह समाचार सुना तो जी धकसे रह गया । विचार आया कि अब—? सोच लिया कि अब वहाँ सब उजाड़ हो जायगा, और क्या ? उस घरका आमंत्रण मिट चुकेगा और ईंट पत्थरकी वह हवेली ही वहाँ भूत-सी खड़ी रह जायगी । पर मेरी भूल । सृष्टिमें कभी कोई अभाव नित्य रहा है ? कौन गड्ढा बहते बहावमें भर नहीं जाता ? सो उनकी मृत्युके दो-एक दिन बाद तक तो ज़रूर वह मकान शोकमग्न दीखा । जैसे प्राण न रहे हों, शव रह गया हो । पर ये दो-चार रोज़ बीतते न बीतते वहाँ तो चहल-पहल दिखाई देने लगी । जगमग पहलेसे अधिक हो चली । दीवारों-पर नया रंग रौगन दीखा । बढ़िया फर्नीचर बढ़ा । जैसे किसी नए सौभाग्यके स्वागतकी तैयारी हो ।

मैंने चाहा कि उधर ध्यान न दूँ । सोच लूँ कि संसार है, शोक करते बैठना यहाँ शोभा नहीं देता । ऐसे संसार कटना दूभर होता है । यहाँ आँख मूँद जिए जाओ, और क्या । हलके रहो और खुशीसे हटकर गिरो तो भी खुशीपर ही गिरो । रंजको पीठ दिए रहो । बुद्धिमानी इसीका नाम है ।

पर एक दिन श्रीधरने आकर कहा कि सुना न आपने ? इसी महीने उनकी शादी होनेवाली है ।

बात जिनकी चल रही थी उनके बारेमें मुझे यह सूचना

प्रातिकर नहीं मालूम हुई । मैंने कहा—क्या-आ ?

बोले—आपको, सच, बिलकुल ख़बर नहीं है ? हम तो समझते थे—

मैंने कहा—साफ़ कहो । क्या डाक्टर और शादी कर रहे हैं ?

श्रीधरने कहा—हाँ । पर हम समझते थे कि वह बिना आपकी सलाह कुछ न करते होंगे ।

मैं चुप रह गया । कहता तो क्या । क्या श्रीधरको यह कहता कि दिन सदा बदलते रहते हैं और किसीकी भी हमेशा नहीं चली ? दो-एक सप्ताह पहले अवश्य दूसरी बात थी । पर बीता व्यतीत हुआ और अब बात और है । डाक्टर साहब अब अकेले हैं और अपने मालिक हैं । जब घरमे स्वामिनी थीं तब,—लेकिन वह इतिहास जुदा है ।

तो सार सूचना यह कि उस घरमें अब नई स्वामिनी आएँगी । मैंने हठात् मनको कहा कि चलो, अच्छा समाचार तो है । बच्चोंको माँ मिलेगी । घर बसाका बसा रह जायगा ।

लेकिन सच कहूँ कि फिर भी जब उधरको निकलता हूँ और मकानका नया रंग-रौगन देखता हूँ, जब देखता हूँ कि नया फर्नीचर वहाँ नए करीनेसे लगाया जा रहा है, बिजलीकी तेज़ और बड़ी बत्तियाँ लग रही हैं आदि, तो यह सब देखकर उनकी याद आ ही जाती है जो अभी कल थीं और आज नहीं हैं । और जो,—खैर, जाने दो उसको । उस यादपर जी बरबस उदास हो आता है ।

२

हालहीकी तो बात है । ऐसा लगता है जैसे कलकी हो ।—
न सही कलकी । पर दो ढाई बरससे अधिक नहीं हुए ।

रातके नौसे ऊपर समय हो गया होगा । शुरू जाड़ेके दिन थे । श्रीधर बैठे थे और 'प्रबाल' भी उस दिन थे । देखता क्या हूँ कि पति-पत्नी दोनों आ धमके हैं । 'धमकना' कहना अच्छा नहीं है । पर उनका आना वक्तके लिहाजसे कुछ ऐसा अनमेल और अनहोना लगा कि—

मैंने दोनोंका अमिवादन किया । कहा—भाग्य कब समय देखता है, तो भी, इस समय कोई असामान्य काम ही आपको लाया होगा । मैं ऋणी हूँ । कहिए ?

पत्नीके चेहरेपर बहुत उल्लास दिखाई देता था । जैसे भीतर भरी हों और कुछ उमगा आता हो । बोलीं—गनीमत है कि यह वक्त तो हमें निकल सका । और बड़ी बात यह है कि चलिए आप मिल गए । नहीं तो—

वाक्यको उन्होंने पूरा नहीं किया और उनमें संकोच हो आया ।

स्थितिको सहज रखनेके लिए मैंने परिचय कराया—आप श्री श्रीधर, मेरे मित्र, यहाँ कालिजमें लेकचरार हैं ।—जी, गवर्नमेंट कालिजमें । आप हिन्दीके साहित्यकार श्री 'प्रबाल' । प्रयाग रहते हैं । और आप श्रीमती और डाक्टर असरानी । आप (श्रीमती) को हिंदीसे प्रेम है ।

परिचयके अनंतर भी एकाएक असमंजस छूटा नहीं । तब

मैंने श्रीमती कल्याणीको देखकर कहा—‘प्रवाल’जीकी रचना तो आपने शायद कोई देखी भी होगी ।

बोलीं—‘ पद्मजा ’ आपने ही मुझको दी थी । मैं कृतज्ञ हूँ । पर हमने आकर शायद आपका हर्ज किया है ।

मैंने अपना हर्ज होनेसे इंकार किया । कह ही रहा था कि डाक्टर बोले—इन्होंने हिंदीमें कुछ कविताएँ लिखी हैं । दिखाओ, दिखाओ,—दिखाती क्यों नहीं हो ?

कल्याणी इसपर कुछ बेमन और लज्जित भावसे मेरी ओर देखकर बोलीं—जी नहीं, कुछ नहीं । वह यों ही—

पति बोले—नहीं नहीं, झिझको मत ।

यह कहकर अपनी पत्नीकी गोदमें रखी हुई कापीको उठाकर उन्होंने मेरे आगे कर दिया । पत्नीसे लाजके मारे कुछ कहते न बना ।

मैंने कापी लेकर कहा—अच्छा तो है । एक हम हैं कि हिन्दी राष्ट्रभाषा हुई तो और प्रांतीय भाषाओंको सीखते ही नहीं । उसका लाभ तो आप इतर प्रांतवालोंको मिला है । देखिए न, सिन्धी होकर आप देखते देखते हिन्दी जान गई ।

कल्याणी कुछ बोलीं नहीं ।

पतिने कहा—ये कविताएँ इन्होंने कुल पाँच रोजमें लिखी हैं । पचाससे ऊपर हैं । अपनी भाषाकी यह मानी हुई कवि हैं, आप जानते ही हैं । हिन्दीमें भी आप देखेंगे कि यह आगे ही दीखती हैं ।

मैंने कहा—सो तो आशा ही है ।

पर पत्नीने कुछ रोषके भावसे पतिकी ओर देखा और जब उन्होंने देखा कि उस रुष्ट दृष्टिको हमने भी देखा है तो वह लाजमें कुछ सकुच आई और उनके चेहरेपर लाली दौड़ गई ।

पर डाक्टर हीन-प्रभ नहीं हुए । बोले—आप तो जानते ही हैं कि इनकी पुस्तकें कालिज तकके कोर्समें हैं । उनका अंग्रेजी अनुवाद हुआ है । हिन्दीमें लिखेंगी तो उसमें भी आप देखेंगे कि नया युग आया है । इनके काव्यमें एक संदेश होता है ।

कल्याणी पतिकी ओर देखती हुई सहसा कुछ जोरसे कह उठी—आपसे किसीने कुछ पूछा है, कि आप बोलते ही जाएंगे ?

पर डाक्टर बोलते ही गए । कुछ हँसकर उन्होंने कहा—अत्युक्ति न मानिए आप । अपनी भाषाकी यह सबसे श्रेष्ठ कवि हैं । और हिन्दीमें आएँगी तो जरूर एक चमत्कार लाएँगी । मैं ठीक कहता हूँ । इनको अपनी तारीफ सुननेमें लजा हो सकती है, लेकिन मुझे सच बात कहनेमें पीछे रहनेकी आदत नहीं है । हाँ—

इतना कहकर भेरे सामनेसे उन्होंने निस्संकोच कापीको उठा लिया और अपनी पत्नीको देते हुए कहा—लो, सुनाओ तो वह ‘ भारतमाता ’ वाली कविता, वही सुनाओ ।

कल्याणीने उस समय मानों एक भर्त्सनाकी निगाहसे पतिको देखकर कहा—जो बात आपको आती नहीं है, उसके बीचमें भी बोलना क्यों आपको जरूरी हो जाया करता है ?

पत्नी सिन्धी भाषामें ही बोली थीं। पर बोलते समय उनकी भावभंगिमा कुछ ऐसी स्पष्ट हो गई थी कि सिन्धी बिना जाने भी उसका भाव हमने समझ लिया।

पति इसपर विशेष अधीर नहीं दिखाई दिए। वह हिन्दीमें ही कहने लगे—कोई बात नहीं, कोई बात नहीं।

दम्पतिकी इस स्थितिपर और लोगोंको कुछ असमंजस हो आया। श्रीधर उठे और जाना चाहने लगे। खड़े होकर उन्होंने अनुमति माँगते हुए कहा—मुझे क्षमा कीजिएगा। खुशी होती अगर मैं ठहर सकता। लेकिन मुझे काम है।

‘प्रबाल’ भी अपनी कुर्सीपर अस्थिर-से दाँखे। मानों और क्या, वह भी चले।

पर उस बिगड़ती-सी स्थितिको एकदम अपने हाथोंमें लेकर कल्याणीने श्रीधरकी ओर देखते हुए कहा—क्या आप जाइयेगा? लेकिन कुछ भी देर और ठहर सकें तो कृपा कर ठहरिए। मैं आभारी होऊँगी। मैं—कविता सुनाना चाहती हूँ। पसंद तो क्या आयगी, क्योंकि मैं हिन्दी जानती भी नहीं हूँ। पर सीखना चाहती हूँ और आप लोगोंसे सहानुभूतिकी आशा रखती हूँ। अनुमति है?

इसपर श्रीधर अनायास अपनी जगह बैठ गये और ‘प्रबाल’ भी निश्चिन्त हो आए। कल्याणीने उस समय बिना देर लगाए कापी खोल कर कविता सुनानी शुरू की। वह ‘भारत-माता’के सम्बन्धमें नहीं थी, एक बटोहीके सम्बन्धमें थी।

... बटोही : वह जाने कबसे चला आ रहा है! राह उसकी

दीर्घ है। संकेत कोई उसे प्राप्त नहीं है। बस एक पुकार उसने भीतर सुनी है। उसे ही थाम वह चलता चला आ रहा है। चलता चला आ रहा है और चलता चला जायगा। क्या चिह्न पीछे छोड़ता आ रहा है, पता नहीं। वह मार्ग भी है या नहीं है, पता नहीं। वह उपकार है, या परमार्थ है, या नहीं है, कुछ उसको पता नहीं है। बटोही ज्ञानी नहीं है, ध्यानी नहीं है। वह किसी मार्गको नहीं जानता। बाहर उसे कोई संकेत प्राप्त नहीं है। एक पुकार उसने भीतर सुनी है। वही है, वही है। अतिरिक्त वह कुछ नहीं जानता ह। उसीमें बँधा वह बटोही, अकिंचन, चला चल रहा है। चलता चला आ रहा है, चलता चला जायगा। कहाँसे आई है वह टेर ? कौन देता है उसे गुहार ? कहाँ है उसके प्राणोंका सूत्रधार ? कहाँ, रे कहाँ ? बटोही यहाँ किधर बिछुड़ आया है ? क्या यह बिछोह अनंत है ? क्या उसका अन्त है ? कहाँ उसका अन्त है ? ओह, बिछुड़ा बटोही नहीं जानता। वह चल रहा है, चल रहा है। आस नहीं, निरास नहीं। बिछोहकी बिथा बस भीतर है। वही धुन, और वही टेक। वही उसकी साँस। बटोही उसीके सहारे चलता चला आ रहा है और चलता चला जा रहा है। संकेत कोई उसे प्राप्त नहीं है, पर टेर उसे बुला रही है, और बिछोह उसे खींच रहा है। बटोही राह-बेराह चल रहा है। चल रहा है, चल रहा है। क्योंकि वियोगमें कहाँ चैन है ? यहाँ सरायमें कुछ उसका नहीं है। वह बटोही है, राह चलतेकी उसकी सबको राम राम है। चलना उसका

काम है । रह जायगा, सब रह जायगा । वह तो चलता ही चला आ रहा है, चलता ही चला जायगा, वह बटोही !...

कविता कुछ ऐसे तल्लीन भावसे सुनाई गई कि जब वह पूरी हुई तक उसके बाद भी कुछ क्षणों तक मानों वह प्रवाहित ही रही । मानों हवामें अभी तैरती हो । समय बँध गया था और कविताकी ही वहाँ एक गति थी । कुछ पल ऐसी ही अवस्था रही ।

‘प्रबाल’की न पूछिए ।

उस अवस्थासे उबरनेपर मैंने देखा तो कवियित्रीका चेहरा मानों सुस्त और करुणा-प्रार्थी हो आया था । जैसे जाने वह क्या अपना खो बैठी हों ।

मैंने कहा—इस कविताक लिए तो आपको बधाई दी जा सकती है, और आपके मधुर कंठको भी ।

उन्होंने सकुचाते हुए पूछा कि भाषाकी भूलें तो बहुत होंगी ?

मैं कुछ कहने जा रहा था कि पति बीचमें बोले—हिन्दीमें ऊँची कविता है कहाँ ? तुम्हारी इस कविताका जैसा सुंदर भाव हिन्दीमें नहीं मिल सकता । मैं कहता हूँ कि हिन्दीमें तुम्हारा अनुपम स्थान होगा ।

यह सुनकर जैसा एक त्रास कल्याणीके चेहरेपर मुझे दिखाई दिया, उससे मुझे कष्ट हो आया । मैंने कहा—डाक्टर साहब जो कहते हैं वह एकदम मिथ्या हो, सो नहीं । आप ज़रूर लिखती रहिए । लिखना छोड़िए नहीं ।

कल्याणीने मंद भावसे कहना चाहा—भाषा—

मैंने कहा—हाँ, भाषा अभी एकदम ठीक तो नहीं है ।

इसका कारण कुछ उच्चारण भी है। पर भाव उत्तम है। भाव चाहिए, भाषा तो मैजती रहेगी।

पतिने प्रसन्न भावसे कहा—देखो, मैं कहता न था। और यह तो खुद हिन्दीके हैं। कोई दूसरी भाषाका होकर हिन्दी साहित्यमें ऊँची जगह बनाए, यह क्यों इन्हें अनुकूल होगा। लेकिन तुम परवा न करो। अच्छा, बताइयेगा आप कि भाषामें क्या दोष है ?

मैं उनके प्रश्नका उत्तर नहीं दे सका। भैपमें हठात् कुछ मुस्कराकर रह गया।

पतिने पत्नीको कहा—मैं कहता हूँ न, भिन्नक छोड़कर लिखती जाओ। परवा न करो। भावमें खूबी है तो तुम्हारी यही भाषा चल जायगी। आजकी हिन्दीमें है क्या ?

कल्याणीने मानों कष्टपूर्वक मुझसे कहा—आप इनकी बातपर न जाइए। यह तो मुझको देवी कहते हैं। (कहती हुई कुछ हँसी, और सुनकर पति प्रसन्न हुए।) और इनको अपनी कहनेका मर्ज है। जानें, चाहें न जानें। तो आपकी राय है कि मैं लिखती रहूँ ?

मैंने कहा—अवश्य राय है और लिखती तो ज़रूर रहिए। लेकिन एक काम कीजिए तो कैसा ? पहले गद्य लिखिए।

वह हँसकर बोली कि छंदमें मात्राओंकी बात शायद आप कहते हों। हिन्दीमें उनका ध्यान बहुत रक्खा जाता सुनती हूँ। मैंने इसीसे अपनी कवितामें जगह जगह मात्राएँ सँभाली हैं। देखिए—

कहकर वह अपनी कवितासे यहाँ-वहाँके चरण ले उनकी मात्राएँ गिनने और गिनाने लगीं ।

मैंने कहा—सो मैं क्या जानता हूँ । मैं कौन छंद जानता हूँ । पर भाषाओंमें उच्चारणकी भी अपनी अपनी विशेषता रहती है । हिन्दीके उच्चारणमें लचक कम है । इससे हिन्दी काव्यमें उतनी तरलता नहीं । हिन्दीका एक्सेंट जुदा है । कानके आदी होनेकी बात है । इससे अभी गद्य लिखें तो अच्छा । थोड़े अभ्याससे हिन्दीका एक्सेंट आप पकड़ लेंगीं । और तब पद्य शुरू कर दीजिएगा ।

मैंने अनुभव किया कि वह मेरी इस बातको कुछ ग्रहण नहीं कर सकीं । पर उन्होंने उसके साथ उस विषयमें चर्चा की, कृतज्ञता प्रकट की और कुछ देर बाद असरानी दंपति चले गए ।

जानेके बाद ‘प्रबाल’ कल्याणी असरानीके प्रति अपनी सराहना प्रकट करने लगे । उनकी सम्मति थी कि इन महिलाकी प्रकृतिमें काव्य है । उन्होंने तो इस विषयमें बड़े चढ़े विशेषण भी प्रयोग किए । श्रीधर कविताके विषयमें तो नहीं कह सकते, पर और तरह वह प्रसन्न थे । उनकी राय हुई कि उन महिलामें परिष्कृत स्त्रीत्व है । पतिके संबंधमें दोनोंकी धारणा उतनी उत्साहवर्धक नहीं थी ।

श्रीधरने मुझसे पूछा—इन लोगोंको आप जानते हैं ?

मैंने कहा—हाँ, जानता हूँ ।

पर श्रीधर अपने ढंगके पूरे जीव हैं । पूछा—कबसे जानते हैं ?

मैंने कहा—दिनोंके लिहाज़से भी कम दिनोंसे नहीं जानता ।
श्रीधरकी और भी जिज्ञासाएँ थीं ।

मैंने कहा—सब जिज्ञासाओंको शान्त कर सकने जितने
ज्ञानका मैं पात्र नहीं हूँ ।

श्रीधर बोले—पति अनुकूल आयसे संपन्न मालूम होते
हैं । इसासे पत्नीको कवितासे प्रेम है।

मैंने कहा—ऐसा नहीं, पत्नी स्वयं डाक्टर हैं । बल्कि
दोनोंके सम्मिलित व्यवसायमें मुख्य डाक्टरी पत्नीकी ही है । वह
विलायतकी पास हैं । पति कहींके पास-शुदा डाक्टर न हों,
तो भी मुझे अचरज न होगा । पर व्यवसायकी देख-रेख उन-
पर ही है ।

श्रीधरको इसपर कुछ अजब-सा मालूम हुआ । साश्चर्य
कहा—वह खुद डाक्टर हैं ? तो-ओ—कवि क्यों हैं ?

मैंने पूछा—क्या आशय ?

बोले—जो डाक्टर है वह कवि नहीं हो सकता ।

मैंने कहा—इसमें मैं क्या कह सकता हूँ । घटना सामने है ।

बोले—यह गलती है ।

मैंने कहा—घंघेसे डाक्टर समझिए और प्रकृतिसे कवि ।

श्रीधर बोले—यह तो दुखकी बात है ।

मैंने कहा—हाँ, शायद सुखकी तो बात नहीं है ।

‘प्रबाल’को इधर उधरसे सरोकार न था । उनकी मति हो
चुकी थी कि वह महिला कवि हैं । बाद जो भी हो ।

३

अगले दिन काफी सवेरे डाक्टर असरानी घर आए । मुझे कुछ विस्मय हुआ । मैंने साभिवादन कहा—आइए, आइए ।

पर वह रुष्ट थे । बोले—क्या आपको यह चाहिए था ?

जब उन्हें प्रकट हुआ कि उनके रोषके शब्दोंसे उनका मतलब मेरी समझमें नहीं आ रहा है, तो उन्होंने कहा—क्या कल आपको इस तरह व्यवहार करना चाहिए था ?

मैंने कहा—अनजाने कोई भूल हुई हो तो मुझे क्षमा कीजिए । लेकिन बात क्या है ?

बोले—उनको (श्रीमती असरानीको) जानते हुए आपने उनक साथ क्या व्यवहार किया ? आप उनकी योग्यता जानते हैं । वह आपसे प्रोत्साहनकी आशा रखती थीं । आपने निरुत्साहित किया । आखिर यही न कि आप नहीं चाहते कि कोई दूसरी भाषासे आकर हिन्दीमें ऊँची जगह बनाए ?

मैंने कहा—राम राम, यह आप कहते क्या हैं ?

उन्होंने बताया—यहाँसे लौटने पर उन्होंने अपनी कविताकी कापीको फाड़ दिया ! सुना आपने, फाड़कर फेंक दिया !! और ज़िम्मेदार आप है ।

इस बातको सुनकर मैं स्तब्ध रह जानेके अलावा और कुछ नहीं कर सका ।

आगे वह बोले—अबसे वह कोई कविता हिन्दीमें नहीं लिखेंगी ।

मैंने कहा—मुझे बहुत दुःख है । लेकिन निश्चय आप

यह नहीं मानते कि मेरा मंशा कभी ऐसा रहा होगा ?

डाक्टर नाराज थे । उन्होंने कहा—और नहीं तो क्या रहा होगा ? वह ऐसी ही नाराजीकी बातें कुछ देर कहते रहे । बताया कि कल्याणी भी आपसे प्रसन्न नहीं हैं । कल्याणीके संबंधमें काफी प्रशंसात्मक बातें उन्होंने कहीं । वह श्रेष्ठ कवियित्री ही नहीं, योग्य गृहिणी हैं और आदर्श पत्नी भी हैं । डाक्टरोंमें तो उनकी कुशलताका प्रश्न ही नहीं है, वह तो प्रकट है । इत्यादि ।

मैंने हार्दिक धन्यवादके साथ सब स्वीकार किया । कहा—आज मेरा उधर आना न हो सकेगा, इसके लिए विनम्र हूँ । पर कल माफ़ी माँगने जरूर आऊँगा । आप उन्हें मेरी ओरसे कहिएगा कि अगर मेरे किसी व्यवहारसे उन्हें कष्ट हुआ है तो उसका कष्ट मुझे ही अधिक है ।

अगले रोज़ जब मैं मिला तो कल्याणीने कहा—सचमुच आपकी बातोंसे मेरा उत्साह जाता रहा था । सो निराशामें मैंने काफी फाड़ दी ।

मैंने कहा—यह तो सदाके लिए मुझे दोषी बना दिया गया ।

उन्होंने पूछा—तो क्या सचमुच मैं लिख सकूँगी ? लिख सकती हूँ ?

मैंने कहा—हाँ हाँ ।

वह सुनकर कुछ देर चुप रहीं । फिर बोली—अच्छा, लिखकर फिर क्या होगा ?

डाक्टर उस समय वहाँ नहीं थे । संध्याका समय था ।
उन्हें कुछ फुर्सत मादूम होती थी ।

मैंने कहा—लिख कर होता क्या है ? पहले जो लिखा,
उसका क्या हुआ है ?

बोलीं—यही तो मैं जानना चाहती हूँ कि उस सबसे
क्या हुआ है ? कवितासे क्या होता है ? सब मनका उच्छ्वास
है । उच्छ्वाससे क्या होता है ?

मैंने कहा—फिर भी उच्छ्वासके घुँटनेसे उसका निकल
जाना क्या अच्छा नहीं है ?

बोलीं—क्यों अच्छा है ?

मैं अचरजसे उनकी ओर देखता रह गया ।

बोलीं—सब व्यर्थ है । सब व्यर्थ है ।

मैंने कहा—सुनिए । व्यर्थ कहनेसे तो जीवनका अर्थ भी
व्यर्थ जायगा । ऐसे कैसे चलेगा ?

बोलीं—न चले तो क्या हानि है ?

स्पष्ट वह बहस चाहती थीं । सुनना चाहती थीं, कहना
चाहती थीं । कुछ करनेकी गर्मी चाहती थीं ।

मैंने कहा—हानि ? हानिका सवाल कहाँ आता है ? जीना
मिल गया है, सो जीना होगा कि नहीं ? हानि-लाभका लेखा
क्या हमारे पास रहता है ? नहीं, उसका बही-खाता तो कहीं
और रहता है । हानि-लाभ दर्ज वहाँ है । हम व्यर्थ हैं, यह
तो कोई तभी कह सकता है जब उसे उस हिसाबका पता

हो । उसका पता नहीं है तब अपनी बातको उतनी दूर हम ले किस बलपर जाँय ? और हिसाबमें शून्य भी शून्य नहीं है ।

वह कुछ उद्विग्न हो आई । उन्होंने कहा—नहीं, नहीं, नहीं । कीमतकी बात फ़िज़ूल है । अनगिनती तारे हैं । अनगिनतां दुनिया हैं । यहाँ कीमत क्या होती है ? सब फ़िज़ूल है । डाक्टरों फ़िज़ूल है । कविता फ़िज़ूल है । क्या उनमें अर्थ है ? सार कुछ समझमें नहीं आता ।

मैंने कहा—छोड़िए । आप तो बहुत उपयोगी काम कर रही ह । रोगीको आरोग्य और मरतेको जीवन देनेका काम आप कर रही हैं । फिर और क्या चाहिए ?

बोलीं—मुझे सन्देह है कि मैं रोगियोंका इलाज करती हूँ । मालूम होता है कि मैं पैसा कमाती हूँ ।

मैंने कहा—पैसा तो व्यवहारका माध्यम है पर रोगियोंको आश्वस्त तो आप करती ही हैं ?

उन्होंने जोरसे कहा—नहीं करती ।

“ रोगियोंको दवा नहीं देती ? ”

“ हाँ, नहीं देती । पैसा लेती हूँ, सो एवज़में सौदा देती हूँ । उँह, दवा ! हाँ लोग हैं जो उससे आराम पाते हैं । लेकिन पैसा खर्च कर जो मिलता है वह आराम ही समझा जाता है । ”

मैंने कहा—यह तो आप अपने साथ व्यर्थ कठोर होती हैं ।

बोलीं—मैं बीमार पड़ती हूँ तो खुद अपनी दवा लेती हूँ ? और जो विश्वासपूर्वक मैं खुद नहीं लेती, वही दूसरोंको देती

हूँ, तो क्या यह उपकार है ? यह सेवा है ? या, यह लूल है ?

मैंने कहा—आपको इस तरह नहीं सोचना चाहिए ।

पर अपने संबंधमें उन्हें समाधान नहीं था । जान पड़ा कि उनको खयाल है कि उमर व्यर्थ बीतती जा रही है । रह-रहकर उन्हें अपने उन सपनोंकी याद होती थी जो कालिजमें पढ़नेके वक्त उनके मनमें झूमा करते थे । उनकी बातोंसे आभास मिलता था कि उनके गिरिस्ती न होती तो वह डाक्टरोंसे कमाई न करतीं । उन्होंने कहा कि अगर उन्हें नया जन्म मिले तो वह अपनेको इंकार करके न चले, फिर चाहे उसका कुछ भी परिणाम आगे हो । वह जीवनका आरंभ जैसे नए सिरेसे करना चाहती थीं और प्रस्तुत जीवनको गलत शुरू हुआ समझकर मानो उसे यहीं खत्म हुआ देखना चाहती थीं ।

मुझे यह सब देखकर तकलीफ हुई । मैंने कहा—ऐसी अनावश्यक बातोंको आप ध्यानमें लाती ही क्यों हैं ?

हँसकर बोलीं—आवश्यक क्या है ? क्या यह डाकटरी ? मोटर ? मकान ? पति ?

मैं इस प्रकारके उत्तरके लिए अनुद्यत था । तो भी मैंने कहा—हाँ, यह सब कुछ क्या अनिष्ट है ? अनिष्ट कुछ नहीं है । आप अपनेको वृथा कष्ट क्यों देती हैं ?

उन्होंने हँसकर कहा—आपको मेरे चारों ओर कहीं कुछ कष्टका बहाना भी दीखता है ? कौन-सा आराम है जो मैंने अपनेको नहीं दे रक्खा ? जिन्हें कष्ट है वे और हैं । मैं उसके लायक नहीं हूँ ।

मैंने कहा—आपकी ऐसी बातें मुझे सुख नहीं पहुँचातीं ।

बोली—ओ, अच्छा ! आपको जो कष्ट दिया उसके लिए क्षमा चाहती हूँ । अब कष्ट नहीं दूँगी । लेकिन खीकी कोई बात सच नहीं माननी चाहिए ।

कहकर खूब हँसन लगीं ।

मैंने बात टालनेके लिए कहा—कविताका खात्मा आप नहीं कर दे रही हैं, यह तो मैं समझ सकता हूँ न ? क्यों कि अन्यथा मुझे अपनेको अपराधी मानना होगा ।

बोलीं—कविता कोई सुखकी तो बात है नहीं । शायद लाचारीकी ही बात है । क्यों ?

मैंने कहा—जो हो, यह आश्वासन मुझे चाहिए कि अपनेसे और मुझसे आप रुष्ट नहीं रहेंगीं ।

रुष्ट ?—इतना दोहराकर वह फिर हँसने लगीं ।

इस भाँति जबतक मैं लौटकर चला हमारी बातचीत कुछ ऐसे विनोदी तलपर होती रही कि प्रतीत हुआ कि सदा तकलीफ़की बातें ही उनके मनको नहीं घेरे रहती हैं । चुहलका भी वहाँ काफी अवकाश है । पर ऐसे समय वह और भी अनब्रूम दीखती हैं ।

४

कुछ दिन बादकी बात है कि श्रीधरने मुझे चौंका दिया । आकर कहा—देख लीं आपकी महिला-रत्न । उनके तो बड़े कारनामे सुननेमें आते हैं ।

मैंने कहा—महिलारत्न ! कौन ? क्या मतलब है तुम्हारा ?

उन्होंने कहा—अजी वही आपकी लेडी असरानी । आप जानते हैं कि डाक्टरी क्या है ? डाक्टरी है पर्दा । और पर्देके पीछे क्या है, सो भी आप जानते हैं ? पीछे जाने क्या नहीं है ।

मैंने कहा—श्रीधर, मैं नहीं जानता, नहीं जानना चाहता । और बात हमेशा शिष्टताके साथ करनी चाहिए ।

पर श्रीधर जाने क्या-कुछ कानोंकी राह अपने मनमें भर लाये थे । उन्हें चुप रहना कठिन था । उन्होंने कुछ ऐसी अनर्थक कहानियाँ सुनाई कि मैं विश्वास तो कर ही न सका, बल्कि श्रीधरको डपट बैठा । कहा—अनकहनी यों नहीं कहनी चाहिए, श्रीधर !

श्रीधर बोले—तो आप इन्हें झूठ समझते हैं ?

मैंने कहा—कुछ और समझनेकी बात तो पीछे है । अव्वल तो मैं उन्हें सुनकर अनसुनी समझना चाहता हूँ ।

श्रीधर तब बोले—ये खास उनकी कही हुई हैं जो उस घरके बहुत घनिष्ठ हैं । वह राय साहब—

राय साहबका नाम सुनकर मैं चकित रह गया । सच ही उस परिवारमें उनका काफी आना-जाना था । फिर भी मैंने श्रीधरसे कहा कि जो हो, वह सब कुछ मैं नहीं मानना चाहता हूँ । किसीके भेदोंसे मुझे मतलब नहीं । भेदिष्ट अपनी जानें । मेरे मनमें तो श्रीमती असरानीके लिए आदर-भाव है ।

श्रीधरने उस समय नाम-धाम पता-ठिकाना ब्योरेवार बताकर कुछ और कहानियाँ कह सुनाई । उन कथाओंमें कल्याणीकी

इज्जतपर आ बनी थी और नायक राय साहब थे ।

सुनकर मेरे मनमें पीड़ा हुई । मैंने श्रीधरको डपट कर कह दिया कि वाहियात नहीं बकना चाहिए ।

श्रीधर सुनकर मुस्करा दिए । उनका विश्वास था कि मेरा मन ही उस विषयमें इस योग्य नहीं रहा है कि मैं तटस्थ वृत्तिसे कुछ समझ-बूझ सकूँ । उन्होंने कहा—कहीं मैं भी तो मायाके वश नहीं हो रहा हूँ ? यदि ऐसा हो तब तो फिर मुझे कहीं कोई दोष क्यों दिखाई देने लगा—

मैंने कहा—जुवान हलकी न बनाओ । एकके दुखको अपना मज़ाक गिनना अच्छा नहीं ।

श्रीधरने हँस कर कहा—ओह, आप दुखी हैं !

मैंने कहा—श्रीधर, तुम जानते हो कि हमारे समाजमें स्त्रीकी स्थिति नाजुक है । अपनी ओरसे उस स्थितिको और विषम बना देना क्या क्षम्य हो सकता है ? पुरुषका दोष दोष नहीं । वह पुरुषार्थ है । लेकिन स्त्री—

खैर । अगली बार जब कल्याणीसे मिलना हुआ तो मैं नहीं कह सकता किस प्रकार, पर थोड़ी ही देर बाद मैं कह बैठा—देखता हूँ, आपको लेकर तरह-तरहके वाद सुन पड़ते हैं !

सुनकर उन्होंने हँसकर दोहरा दिया—सुन पड़ते हैं न ?

इस उत्तरपर मैं सहसा निरुत्तर-सा हो आया ।

वह बोलीं—मैं ही नहीं, तब कौन कह सकता है कि वे सब ग़लत हैं । फावड़ा बननेके लिए भी सुई तो चाहिए ही । बेबात भला कोई बात चलती है ? आपकी क्या राय है ?

मैं कुछ अकचका आया। पूछा—क्या आप जानना चाहती हैं कि ऐसी बातें कौन उड़ाता है ?

उन्होंने कहा—शायद मैं जानती ही होऊँ।

“आपका क्या अनुमान है ?”

“मेरे लिए अनुमानका सवाल ही नहीं है।”

“इसका मतलब तो यह हुआ कि आप निश्चय जानती हैं कि वह कौन है। फिर आप कुछ प्रतीकार क्यों नहीं करती ?”

बोलीं—प्रती-कार !

कह चुकनेपर एक उदास मुस्कराहट उनके चेहरेपर आ गई। आगे वह कुछ नहीं बोलीं।

मैंने उस समय कहा—सुनिए, खुद राय साहब—

वे उस विपणन मुस्कराहटके बीचमें ही रुककर और मुझे रोककर बोलीं—उनका मुझपर बहुत ऋण है।

मैंने कहा—ऋण ! क्या रुपया चुकाना है ?

मुस्कराई और बोलीं—कृपाका ऋण।

मैंने तब कहा—तो शायद उनकी कृपाके इस रूपका आपको पता न होगा।

उत्तरमें वह धीमी होकर बोलीं—वह सब कर सकते हैं। बड़े लोग हैं।

मुझे उनकी बातोंसे तथ्यका कुछ अनुमान न मिला। मैंने कहा—उन राय साहबसे मेरी तो घनिष्ठता हो न सकती। मैं नहीं जानता कि फिर—

हँसकर बोलीं—आप मुझसे नाराज़ होना चाहते हैं ? आपको नाराज़ होनेका हक है।

मैंने कहा—आदमी जो ठीक न हो उससे फिर परिचय—

बोलीं—आपको मेरी आत्माका खयाल है ? मैं कृतज्ञ हूँ ।

मैं इसका आशय कुछ न समझ सका । इस वाक्यमें मुझे अपनी अवज्ञा ही मालूम हुई होगी । अन्यथा मैं नहीं कह सकता कि उस समय एक भद्र महिलाके प्रति मुझे अपने अधिकारकी मर्यादाका ज्ञान क्यों काफी नहीं रहा । मैं कह बैठा—आप अगर चाहें तो राय साहबसे मिलना छोड़ सकती है ।

उन्होंने हँसकर कहा—अगर मैं चाहूँ ?

इस प्रश्नवाचक उत्तरपर मुझे जाने क्या सूझा कि मैंने पूछा—अच्छा, डाक्टर भार्गव कौन हैं ?

उनका चेहरा जाने कैसा हो आया । बोलीं—डाक्टर भार्गव ! भार्गव कौन ?

मैंने कहा—आप कह सकती हैं कि आप उन्हें नहीं जानती ?

ठोड़ीको हाथोंमें लेकर वह कुछ सोचती रह गई । जैसे कुछ भूल रही हों । बोलीं—डाक्टर भार्गव, भार्गव कौन ? हाँ, सो ?

मैंने निर्दयतापूर्वक कहा कि आप सोचकर देखिए ।

थोड़ी देर बाद एकाएक जैसे उन्हें कुछ सुधि हुई । बोलीं—भार्गव आपने कहा ? कहीं भटनागर तो नहीं ?

अनायास मैं कह उठा—हाँ हाँ, भटनागर ।

और मैं अपनेमें ही बहुत लज्जित और संकुचित हो आया ।

मेरी इस भूल और भेप पर वह बहुत ही हँसी ।

मैं एकदम हतप्रभ हो गया ।

तब वह मानो दयापूर्वक बोलीं—आपकी तरफ़ ही तो उनका घर है । आप नहीं जानते ? और कौन हैं वह,—एक डाक्टर हैं ।

कह कर मेरी भेपपर वह फिर हँसने लगीं । बोलीं—क्या आप सब कुछ जानना चाहते हैं ? एक स्त्रीका सब कुछ जानना चाहते हैं ?—लेकिन सब तो ईश्वर ही जानता है ।

उनकी इस उक्तिपर तो मानों मेरा ख़ात्मा ही था । लेकिन देखता क्या हूँ कि ईश्वर शब्द निकलते निकलते उनके चेहरेकी हँसी गायब हो गई है और वहाँ एक त्रास लिख आया है । उस वचनमें मेरे लिए व्यंग नहीं था, व्यथा ही थी । उस चेहरेको देखकर उस समय मैं अपनेको अपराधी अनुभव करने लगा । मेरे मनमें इस रमणीके प्रति जो कथंचित् एक असम्मानका भाव उठा था, वह मुझे अपना ही अपमान मालूम होने लगा ।

बोलीं—एक दिन मैं आपसे खुद ही कहना चाहती थी । लेकिन आपको पूछनेकी जरूरत होगी, ऐसा ख़याल न था ।

मैंने कहा—वह सब जाने दीजिए । मुझे उसपर खेद है । हमारा समाज संशयशील है । मेरे संस्कारोंमें भी वह दोष रह सकता है । कृपा कर मेरी बातोंको मनमें न लीजिएगा ।

उन्होंने हँसकर कहा—आप मुझसे डरिए नहीं । और मुझे निर्दोष भी न मानिएगा । स्त्री निर्दोष हो सकती है ?

पहला दोष तो यही कि वह स्त्री है ।

मैंने उस प्रसंगको टालना चाहा । मुझे वह भारी हो रहा था । कहा कि यह आप क्या कहती हैं, छोड़िए भी ।

बोलीं—लेकिन दोषोंसे छुटकारा भी तो है । मैं जानती हूँ कि मैं अधिक काल नहीं जीऊँगी । ऐसा जीना कठिन है और व्यर्थ है ।

मैं उन्हें रोक न सका । वह कहती रहीं—देखिए न, कितना बोझ है, कितना बोझ ? सिरका बोझ सँभल भी जाय, पर मनका यह बोझ कब तक सहारा जा सकता है ? और मैं किसीसे उस मनको खोल नहीं सकती । परदेस है, यहाँ कौन अपना है ? और अपने देसमें भी तो अब मैं बिरानी हूँ । अँग्रेजी पढ़ी हूँ, विलायत गई हूँ । यहाँकी नहीं, वहाँकी नहीं । इससे अपना बोझ बाँट भी तो नहीं सकती । समझती हूँ कि बाँटनेसे चित्त हलका हो जाता होगा । पर और भी तो अपनेको लेकर व्यस्त हैं । सबको सँभालनेको अपनापन है । मुझे दुख तो यह है कि मैं अपने डाक्टरसे भी तो कुछ नहीं कह सकती ।—

कहते कहते वह एकाएक रुक गई । जैसे अनकहनी कहनेके किनारे आ लगी हों । अनंतर एक भरी साँस खींचकर बोलीं—सब भाग्य है और क्या ।

संध्या बीत चली थी । बिजलीका प्रकाश स्पष्ट उनपर पड़ रहा था । कहकर वह चुप हो गई थीं । मुझे कुछ सूझ न रहा था । ऊपर पंखा चल रहा था । उसकी धीमी धीमी

आवाज़ आती थी ।

आखिर उस शान्तिके असमंजसको भंग करते हुए मैंने कहा—आप अपने भाग्यसे नाराज़ नहीं हो सकतीं । जाने कितने हैं जो आपके भाग्यपर ईर्ष्या न करते होंगे ।

बोलीं—यही तो, यही तो । और मैं भाग्यसे नाराज़ नहीं हूँ । अपने भाग्यको दुर्भाग्य बनानेवाली क्या मैं ही नहीं हूँ ? मैं तो अपनेसे ही नाराज़ हूँ । सोचती हूँ कि मैंने अपना यह क्या कर डाला !

कहकर वह ऐसे देखने लगीं जैसे कहीं न देख रही हों । उन आँखोंमें जैसे दृष्टि ही न हो । दृष्टकी ओरसे आँखोंको यों अनदिखनी बनाकर क्या वह अदृष्टको देखना चाहती थीं ?

मैंने उस समय अवश भावसे कहा—क्यों,—क्यों, बात क्या है ?

हठात् सँभलती हुई वह बोलीं—कुछ नहीं, कुछ नहीं ।

मैंने कहना चाहा कि डाक्टर साहब—। पर मैं बात पूरी नहीं कर सका । उन्होंने व्यतिव्यस्त भावसे घड़ीकी ओर देखकर कहा—ओह, आठ हो गया ! मैं भूली । मुझे एक जगह जाना है । अच्छा तो आप—

कहती हुई वह उठ खड़ी हुई और वहाँसे चल दीं । मैं भी खड़ा हो गया ।

बाहर ही द्वारपर डाक्टर आते हुए दिख गए । उन्होंने पत्नीसे कहा—मुझे देर हो गई । तुम तैयार हो न ?

जैसे भुँफलाहटके साथ पत्नीने कहा—कबसे तो तैयार

हूँ । लेकिन अब मैं नहीं जाऊँगी । जानेका यह वक्त है !
 पतिने कहा—सो देर ऐसी कुछ नहीं हुई । चलो चलो ।
 फिर मुझे देखकर बोले—ओः आप ! आइए, बैठिए ।
 मैने कहा—नमस्कार । पर मैं देरसे यहीं हूँ ।
 इसपर कुछ निरर्थक भावसे वह बोले—जी हाँ । बैठिए ।
 पत्नी बोलीं—वह काफी देरसे तो यहीं बैठे हैं । और
 हमको भी जाना है । अच्छा वकीलसाहब, आप जाइए ।
 डाक्टरने कहा—अच्छा अच्छा, और शेकहैंडके साथ मुझे
 बिदा किया । कल्याणीने भी हाथ जोड़कर प्रणाम किया ।

५

कुछ दिन बाद उधरसे जाना हुआ तो दवाखानेमें डाक्टर
 मिले । पूछनेपर उन्होंने बताया—पत्नी अपने देश गई है ।
 —हाँ, कराची । कोई दो सप्ताह लौटनेमें लगेंगे ।

मैंने डाक्टरसे कुछ देर इधर-उधरकी बातचीत की ।
 कुशल-क्षेम पूछा । माझम हुआ कि सब आनंद है ।—व्यवसाय ?
 —जी हाँ, सब आपकी कृपा है । सब ठीक है । उन्होंने हमारे
 परिवारका संवाद पूछा और सब कुशलता जानकर प्रसन्नता
 प्रकट की ।

लेकिन मेरा मन लौटकर कुछ हर्ष अनुभव नहीं कर रहा
 था । जैसे डाक्टर अनमने हों और मैं उन्हें रुच न रहा होऊँ ।
 जैसे कुछ उन्हें न रुच रहा हो । उनसे मिलनेपर मैं यह
 भी नहीं जान सका कि उनके आश्वासनके लिए मैं क्या काम

आ सकता हूँ। अपने और उनके बीच मैंने इस बार कुछ फासला अनुभव किया जो मुझे प्रीतिकर न हुआ। लेकिन मुझे कुछ सूझा नहीं कि क्या हो सकता है और मुझे क्या करना चाहिए।

खैर। इसके कोई चारों रोज़ बाद श्रीधर ख़बर लेकर आए कि श्रीमती असरानी एक कोठरीके अन्दर बन्द पड़ी हैं। उन्हें खूब मारा गया है और दो रोज़से उन्होंने कुछ खाया-पीया नहीं है।

मैं श्रीधरको जानता हूँ। मैंने कहा—श्रीधर, क्या फिजूल बकते हो ! वह तो कराची थीं। कब लौटीं ?

श्रीधरने कहा—कराची ! कराची क्या होता है ?

मैंने कहा—तुम्हें नहीं मालूम। वह कराची गई हुई थीं न ?

श्रीधर बोले—खूब ! अजी वह शहरसे कहीं बाहर नहीं गई। कई रोज़ घरसे ग़ायब ज़रूर रहीं। लेकिन रहीं यहीं कहीं। मिलीं, तो पतिने उनकी ख़बर ली। कह तो रहा हूँ कि वह अब कोठरीमें मुँदी पड़ी हैं और दो रोज़से खाना तक नहीं खाया है।

मैंने कहा—हिश, कहते क्या हो ? अभी चौथे दिनकी बात है, खुद डाक्टरने बताया था कि देश गई हैं। आनेमें दो हफ़्ते लगेंगे।

श्रीधर हँसने लगे।

मैंने व्यग्र होकर पूछा—तो क्या तुम्हारी बात सच है ? ठीक बोलो जी।

श्रीधरने कहा—सच नहीं तो क्या मैं झूठ भी कहता हूँ ?

इसपर मैं इरादेके साथ उनके दवाखाने गया । वहाँ पहलेकी भाँति डाक्टर असरानी अकेले बैठे थे । मुझे देखकर कहने लगे—
आइए, आइए ।

मैंने कहा—कहिए, अभी डाक्टर साहिब देशसे नहीं लौटीं न ?

बोले—हाँ, अभी नहीं । पर पत्र आया है और अब जल्दी आयँगी ।

मैंने कहा—सब कुशल-मंगल तो है ?

बोले—जी हाँ, सब कृपा है । पत्रसे मालूम होता है कि वह वहाँ प्रसन्न हैं । समंदरी हवा उन्हें खूब माफ़क आई है ।

मुझे यह सब सुनकर बहुत बुरा मालूम हो रहा था । लेकिन मैं पति-पत्नीके बीच होता भी कौन था ! इसलिए मैं साधारण ऊपरी बातचीत करके लौट आया ।

अगले दिन एक स्थानीय सार्वजनिक नेता मेरे पास आए । कहने लगे—आपको डाक्टर और मिसेज़ असरानीको समझाना चाहिए । क्यों कि आपका उनसे परिचय है ।

मैंने कहा—मैं कुछ नहीं समझा । बात क्या है ?

सुनकर उन्हें अचरज हुआ । पूछने लगे—आपको नहीं मालूम ?

मैंने कहा—आप बताइए ।

बोले—मुझे घरमें पत्नीसे मालूम हुआ कि मिसेज़ असरानीको उनके पतिने बुरी तरह मारा है और बंद कर

दिया है । मैं अभी डाक्टर असरानीसे मिल कर आ रहा हूँ ।
 उनको इम घटनापर बहुत रंज है । वह पत्नीसे हर तरह
 न्नामा माँगनेको तैयार है । लेकिन मिसेज़ असरानी जिद नहीं
 छोड़ती हैं और खाना नहीं खाती हैं । आप दोनोंको समझा
 -बुझा दीजिए न ।

मैंने पूछा—वह कहती क्या हैं ?

बोले—मैं उनसे खुद तो मिल नहीं सका । लेकिन आप
 उनका झगड़ा निबटा क्यों नहीं देते ?

मैंने पूछा—मैं क्या कर सकता हूँ ।

बोले—मेरी पत्नी मिसेज़ असरानीसे मिली थीं । और भी
 यहाँकी प्रमुख महिलाएँ उनसे मिली हैं । डाक्टर असरानीकी
 ज्यादाती साबित है । मैंने अपनी पत्नीकी मार्फ़त कहलाया था
 कि मिसेज़ असरानी किसी बातकी चिन्ता न करें । अगर वह
 चाहें तो उनके लिए एक अलग डिस्पेंसरी हम खुलवा सकते
 हैं । पतिके हाथों क्रूरता वह क्यों सहती हैं ? अपना ही एक
 चैरिटी हास्पिटल है । महिलाओंका एक डेप्युटेशन भी मैंने
 भिजवाया था । उन सबने भी समझाया था कि यह स्त्रीकी
 इज्जतका प्रश्न है । उनका अकेलेका ही सवाल यह नहीं है ।
 घर घर ऐसी बातें हो रही हैं । इसका इलाज है कि पत्नी
 अपनी प्रतिष्ठा हाथमें ले । पतिके आश्रयकी मोहताज वह क्यों
 रहे ? उन महिलाओंने मिसेज़ असरानीसे बहुत कहा-सुना कि
 तुम तो सब तरह योग्य हो । तब पतिकी धौंस क्यों सहती
 हो ? उठो, चाहो तो अलग होकर खुदमुख्तारीके साथ

अपनी डाक्टरी चलाओ । हमारी समिति दवाखानेकी व्यवस्था कर सकती है । पत्नी पतिकी कोई सम्पत्ति नहीं है । इस तरह सभीने उन्हें बहुत समझाया । लेकिन उन्होंने किसीकी नहीं सुनी । कहा गया कि ऊपर ईश्वर है, धरतीपर सरकारका कानून है । इनमें कोई भी अत्याचारका समर्थन नहीं करता । कानूनका पूरा सहारा तुम्हें हो सकता है और उसकी मददसे तुम पतिको सबकुछ सिखा सकती हो । लेकिन यह सब मिसेज़ असरानीकी समझमें नहीं आया । जाने वह कैसी विलायत गई है और कैसी लिखी-पढ़ी हैं ! न वह पतिसे अलग होनेको तैयार हुई, न कुछ उनके खिलाफ़ कानूनकी मदद लेनेकी उन्हें हिम्मत हुई । उधर हठ भी रखती हैं और खाना छोड़ बैठी हैं । यह तो बुरी बात है न ? समाजमें ऐसे अनीति फैलती है । अब भी जाने क्या क्या नहीं कहा जा रहा है । हम मिसेज़ असरानीको समझदार समझते थे । लेकिन—

मैंने पूछा—आप क्या चाहते हैं ?

बोले—उनकी पतिसे नहीं बनती है, यह प्रमाणित है । सुना है, पहले भी मार-पीट होती रही है । ऐसी हालतमें वह ज़रूर अदालत जा सकती हैं । अलग रहकर भरण-पोषण पा सकती हैं । तिसपर वह तो क़ाबिल डाक्टर हैं ।

मैंने पूछा—एकदम वह इस बातको नहीं मानती ? या कुछ—

बोले—क्या कहा जाय ? मेरी पत्नी और डेप्युटेशनकी स्त्रियोंने हर पहलूसे समझाया । कहा कि स्त्रीकी भी इज़्ज़त है ।

और एककी इज्जतका अब सवाल भी नहीं रहा ह । अब तो स्त्री-जातिके मानका प्रश्न है । लेकिन मिसेज़ असरानीने कुछ जवाब नहीं दिया । सभाकी महिलाओंने बताया कि तुम्हें कुछ नहीं करना होगा । सब बन्दोबस्त हम कर देंगी । फिर देखें पति किस तरह चूँ भी करते हैं । पर उस समय भी उनकी देहपर अग्रचर्चे जगह जगह गहरी चोटके निशान थे और रह रहकर वह कराहती थीं, पर पतिके प्रतिरोधमें उठनेकी हिम्मत उन्हें नहीं होती थी । कैसे गहरे संस्कार जड़ताके हमारी स्त्रियोंमें हो गए हैं और कितनी कायर वे हो गई हैं कि—। कारण है वही इकोनमिक डिपेंडेंस, और क्या ? क्या आप समझते हैं कि उनकी साहसहीनतामें पतिके अवलंबकी आदत और उसका आतंक ही कारण नहीं है ?

मैंने कहा—भगवान जाने ।

बोले—शिः ! ये जड़ताके संस्कार !....(इत्यादि ।)

अन्तमें कहा—आप जाकर दोनोंसे मिलिएगा तो ? और पत्नीको समझाइयेगा कि जो चाहे करें, बिना खाए जान क्यों खोती हैं ?

मैंने तब पूछा—यह तो हुआ । लेकिन पूरी बात क्या है ?

बताया गया कि कुछ रोज़ पहले पतिने हाथ पकड़कर उन्हें घरसे बाहरका रास्ता दिखा दिया था । कहा था कि निकल जाओ, और अब शकल दिखानेकी ज़रूरत नहीं है । उसके बाद नहीं मालूम कि वह पाँच-सात रोज़ कहाँ कैसे रहीं । इस बारेमें तरह-तरहकी बातें हैं । कोई कहता है कि

अपने एक नौकरके यहाँ रहीं, और कोई कुछ और कहता है । उसके बाद पता चलनेपर पति उन्हें अनुनय-आग्रहके साथ घर ले आए ।

मैंने कहा—अनुनयके साथ अगर पत्नीको लाया गया है तो फिर इस कांडकी क्या आवश्यकता थी ?

बोले—उन्हें लाया तो लोक-लिहाजके लिए गया होगा । पर कोई पति निरे भले-भोले भावसे तो पत्नीकी ऐसी कार्रवाइयोंको नहीं देख सकता न ?

मैंने कहा—तो ताड़न ज़रूरी है ?

वह बोले—पतिके लिए ऐसा अस्वाभाविक नहीं है, यह तो आप मानेंगे ही ।

मैंने कहा—पत्नीके विषयमें समाजके सामने अपने पतित्वकी गुरुता और उत्तरदायिता प्रमाणित करना ज़रूरी पड़ता हो तो ताड़ना भी, चाहे वह अमानुषिक हो, ज़रूरी हो जाती है । है न ?

उन (पंडितजी) ने कहा—मैं स्त्री-स्वातंत्र्यका हिमायती हूँ, लेकिन इसके अर्थ कुछके कुछ न समझ लिए जावें । पुरुष स्त्रीके पक्षमें कापुरुष नहीं हो सकता । स्त्रीको राहपर रखनेके कामसे पुरुष कैसे बच सकता है ? पौरुषका अर्थ निरी शान्ति नहीं है ।

पर वह जो हो, मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि मैं असरानी-दम्पतिसे मिलूँगा क्योंकि वैमनस्य शुभ नहीं है ।

६

मैं उधर गया तो यथापूर्व डाक्टर असरानी अपने दवा-
खानेमें मिले । उन्होंने मेरा अभिवादन किया । कहा, आइए ।
अनंतर सूचना दी कि इस बार जो कराचीसे पत्र आया है
उसमें आपको याद किया है और नमस्कार लिखा है ।

मैंने कहा—डाक्टर, मुझे माफ़ कीजिएगा । लेकिन मालूम
हुआ है कि वह कराची नहीं हैं, यहीं हैं ।

बोले—क्या-आ ? नहीं । कौन कहता है ? मैं क्या—
देखिए, मैं खत दिखाता हूँ ।

मैंने कहा—यह सब कष्ट न कीजिए । यह बतलाइए कि
क्या खाना उन्होंने अबतक नहीं खाया और अब भी हठपर
अड़ी हैं ?

डाक्टर इसपर प्रकटमें ही सकपका गए और तुरंत कुछ
कह न सके । मैंने पूछा—क्या मैं उनसे मिल सकता हूँ ?

डाक्टरने मुझे शीघ्रतासे आश्वासन दिया—वह अब
बिल्कुल ठीक हैं । कोई बात नहीं है । उन्हें बुखार आ गया
था । इस समय उन्हें कष्ट न देना ठीक होगा । तो भी, मैं
देखकर आऊँ ।

कहकर वह तभी मेरे सामनेसे चले गए । थोड़ी देर बाद
आकर बोले—वह सो रही हैं ।

मैंने कहा—खैर, न भी सो रही हों तो कोई बुराई नहीं ।
लेकिन डाक्टर, ऐसा चाहिए नहीं ।

उत्तरमें डाक्टरने क्या-कुछ कहा, उस सबपर मैंने ध्यान नहीं दिया। वह क्षमा माँगने लगे। कहने लगे कि चलिए, ऊपर चलिए। मैं उन्हें जगा देता हूँ। लेकिन फिर मैंने न जाना ही उचित समझा और लौट आया। मैंने अनुभव किया कि अपनी लज्जा दूसरेपर प्रकट करना सरल काम नहीं है और डाक्टरकी जगह होकर दूसरा भी कदाचित् वैसा ही व्यवहार करता। इस प्रकार सोचकर डाक्टरके प्रति अपने मनकी कठोरताको मैंने दबाया।

इस बातको कुछ दिन बीत गए और कल्याणी फिर अपनी जगह दिखाई देने लगी। लेकिन इस बार दवाखानेमें कुछ परिवर्तन भी देखनेमें आया। दो कम्पाउंडर बदले, एक नर्स भी बदली गई, और डाक्टर साहिब अब बाहरकी मेज़पर बैठने लगीं जहाँ पहले डाक्टर असरानी बैठा करते थे।

इसके अतिरिक्त सुननेमें आया कि डाक्टर असरानी किसी बड़े व्यवसायके लिए दूर जाना चाह रहे हैं। सुनकर मैं नहीं समझ सका कि क्या समझूँ।

इसी कालकी बात है कि एक दिन तीसरे पहरके समय कल्याणी असरानी हमारे यहाँ दिखाई दीं। देखकर मैं संभ्रममें रह गया। कपड़े ऐसे कि बहुत सादे। मुझे मालूम न था कि पहिनावेसे आदमी इतना बदल सकता है। दवाखानेमें एकदम आधुनिक सज्जामें ही मैंने उन्हें देखा था। मैं उन्हें उसी बानेमें पहचाननेका आदी था। सो इस नई चाल-ढालपर मैं कुछ हिचक आया।

पर उन्होंने मेरा ध्यान उधर रहने ही नहीं दिया। आकर

जाने कैसे खुले भावसे उन्होंने कहा—अबसे इतवारको छुट्टी मनाना तय कर लिया है। सो आज इतवार है और मेरी छुट्टी है।

मैंने कहा—बड़ी खुशीकी बात है।

हँसकर बोलीं—डाक्टर भी साथ आते थे। पर मैंने कहा, मैं अकेली ही जाऊँगी। वह (पत्नी) भीतर हैं न ?

मैंने कहा—हाँ। बुलाऊँ ?

“ नहीं, बुलाइए नहीं। मैं अंदर नहीं जा सकती ? पर शायद हम लोग ईसाई बराबर हैं। ”

मैंने कहा कि हम लोग सनातन मर्यादाकी कैसी शोभा हैं, आप देख ही लीजिएगा। कहकर मैंने भीतर आवाज़ दी—अजी, सुनना।

पत्नी, बाहर आनेपर, पहले तो उन्हें इस साजमें देखकर ठिठक-सी रहीं, फिर खुश हुईं।

कल्याणीने उनसे कहा कि मैं यहाँ आज डाक्टर नहीं हूँ, यह बताए देती हूँ। [पत्नीका इलाज अधिकतर वे ही करती थीं।] लेकिन डाक्टर नहीं हूँ, तो क्या यहीं खड़ी रहूँगी ? अंदर आज मुझे नहीं ले चलेंगी ?

पत्नीने कहा—अब आप डाक्टर नहीं हैं, तो मेरे लिए तो रहा-सहा डर भी जाता रहा। आइए चलिए न।

“ सुनिए, पहले मेरा मतलब सुन लीजिए। मैं हिन्दू हूँ। मुझे आप किस्तान तो नहीं मानती हैं ? ”

उनकी वाणीपर पत्नीका संभ्रम सब दूर हो गया। हाथ पकड़कर बोलीं—छोड़िए भी, चलिए, अंदर चलिए।

“ चलूँ तो । लेकिन पहले यह बताइए कि आपके यहाँ खाना कब बनता है । असलमें मुझे कुछ आता नहीं है । खाना तक बनाना नहीं आता । अपने घर कुछ मैं सीख नहीं सकती । बेहरा हमें मैम साऽब मानता है । मैम लोग भला खानेमें हाथ लगा सकती हैं ? ”

कहकर वह हँसने लगीं । इस समय वह खूब खुर्ची और उल्लसित दिखाई देती थीं । उन्होंने पत्नीसे पूछा—बच्चे कहाँ हैं ?

“ मुन्नी है, बाहर कहीं खेल रही होगी । ”

“ बाहर क्यों खेल रही होगी ? उसे बुलवाइए । बालक बिना घर कैसा ? ”

खैर । उस रोज़ रात होने तक वह घर ही रहीं । साग-भाजी हाथसे बनाई और आसनपर बैठकर रोटी खाई । शरीर कुछ उनका सूक्ष्म न था, तो भी बच्चोंके साथ तरह-तरहके खेल खेले । कई पड़ोसके बालक भी खिंच आए थे । वापिस जाने लगीं तो बोलीं—हर इतवार मैं छुट्टी रखना चाहती हूँ । क्या आगे भी आपके यहाँ आ सकती हूँ ?

मैंने कहा—यह सवाल करने लायक अब आप नहीं रहीं हैं ।

हँस कर बोलीं—हाँ, मैं किसी लायक नहीं हूँ ।

मैंने कहा—गुनीमत है कि आप यहाँसे जाने लायक हैं ।

वह बहुत हँस आई । बोलीं—यही बात है । मैं हर घरसे निकलने लायक अवश्य हूँ ।

मैंने कहा—मैं अपनी जुबान बंद रखना चाहता हूँ । नहीं तो यह घर आपहीका घर है ।

कहने लगीं—मैं तो अपने यहाँ किसीको निमंत्रण दे नहीं सकती । लेकिन कल आप आएँगे ? इनको भी साथ लाइएगा । कल मेरा जन्मदिन है । बहिनजी, कल ज़रूर आएँ ।

वचनके अनुसार अगले दिन हम गए । उस समय उन्होंने सफ़ेद खदरके कपड़े पहने थे और अभ्यागतोंकी सेवामें लगी हुई थीं । काफ़ी लोग निमंत्रित थे । बंदोबस्त पश्चिमी ढंगका था । डाक्टर असरानी व्यवस्थाके कामोंमें व्यस्त थे । उनके दवाख़ानेके खुलनेका भी वर्ष-दिन आज ही था । निमंत्रण उसीके उपलक्षमें था । इस बार आजके दिन एक अतिरिक्त आरोग्य-भवन भी खोला जानेवाला था । उसमें फ़ीस नहीं ली जायगी और दवा भी मुफ़्त दी जायगी । आरंभमें दस बेड्सकी व्यवस्था थी । उद्घाटनके अनंतर इस विषयमें मिसेज़ असरानीने सब उपस्थितोंकी अभ्यर्थनाके साथ क्षमाप्रार्थना-पूर्वक अंग्रेज़ीमें कहा कि उनका विचार अब अपना अधिकांश समय इस निशुल्क आरोग्य-भवनको देनेका है । इस दवाख़ानेको अब वह कुल एक घंटा दिया करेंगीं । क्योंकि जिनके पास इलाजके लिए पैसा है, उनका सवाल नहीं है । पैसा जिनके पास नहीं है, सवाल उन्हींका है । मेरे देखनेमें आया है, पैसेवालोंमें बहुतोंका रोग ही पैसा है । बड़ी फ़ीसके एवज़में ही उन्हें आराम पहुँचाया जा सकता है । पैसा उनका अधिक खर्च हो, इसीमें उन्हें इलाजकी कीमत मालूम होती है । इस तरहके पैसेके रोगियोंकी सेवासे एकदम हाथ खींच लेनेका मेरा साहस नहीं है । पैसा कम प्रलोभन नहीं है ।

[तालियाँ] प्रलोभनमें न पड़ना मेरे लिए लाभकी बात भी नहीं है । [तालियाँ] आप लोग जानते हैं, बिना पैसे हम सभ्यतापूर्वक उठ-बैठ भी नहीं सकते । [तालियाँ] इसलिए एक घंटेके लिए इस जगह फीसवाले रोगियोंके लिए भी मैं अवश्य सुलभ रहूँगी । सुलभका मतलब आप जानते ही हैं, दुर्लभ । [तालियाँ] अधिक सुलभता पैसेके विरुद्ध है । [तालियाँ] पर इस आमदनीका सब रुपया इस आरोग्य-भवनके काम आयगा ।....

भवनका टस्ट किया गया और मुझे बड़ा अचरज हुआ कि मेरा नाम भी ट्रस्टियोंमें है ।

खैर, धीरे धीरे सभी अभ्यागत चले गए । मैं भी अब चलूँ । लेकिन पत्नीको भीतरसे छुट्टी नहीं मिल रही थी । मैंने डाक्टर असरानीसे कहा कि इस विषयमें मेरी सहायता करें, उन्हें भेज दें । अब चलना चाहिए ।

डाक्टर गए, तो खुद खो रहे । काफी देर हो गई । तब मैं हिम्मत बाँधकर स्वयं अंदर गया । राहमें देखता हूँ—डाक्टर मुँह नीचा किए कुछ बेखबरसे आ रहे हैं । मैंने उन्हें टोककर कहा—डाक्टरसाहब, कहिए ?

“वह आ रही हैं” —अन्यमनस्क भावसे यह कहकर वह आगे बढ़ गए ।

तभी कल्याणी आती हुई मिली । मैंने कहा—शायद उन्हें अभी आपकी ओरसे छुट्टी नहीं मिली है । मेहरबानी कीजिए ।

वे प्रसन्नभावसे बोलीं—वह कहीं खो नहीं गई हैं, बेताब न हूँजिए । मैं भी चल रही हूँ ।

मैंने कहा—आप क्यों ? हम चले जाएँगे ।

बोलीं—मैंने कह तो दिया कि साथ चल रही हूँ ।

मेरे बहुत इंकार करनेपर भी खुद डाइव करती हुई वह अपनी गाड़ीमें हमें घर ले आई । मैंने रास्तेमें कहा—ट्रस्टकी चर्चा आपने मुझसे नहीं की ?

बोलीं—दया इतना भी आपका विश्वास मैं नहीं कर सकती थी ?

घर आकर देखता हूँ कि वह आरामसे बैठ गई हैं और इधर-उधरकी बात करने लगीं हैं । कुछ देरमें पूछा—क्या आप बाज़ारका भी कुछ हाल-चाल रखते हैं ?

मैंने पूछा—आपका मतलब क्या है ?

“ सुनती हूँ कि एक चर्चा हर किसीकी जुबानपर है । आपने कुछ नहीं सुना ? ”

मैंने कहा—क्या ? मुझे क्या सुन लेना चाहिए था ?

उन्होंने हँसकर कहा—वह ज़रूरी ख़बर है और सुनने लायक है । वह यह है कि हर कोई जानता है कि मैं पाँच रोज़ पर-पुरुषके यहाँ रह कर आई हूँ । आप इतना तक नहीं जानते ? लोग तो इससे भी आगे बहुत कुछ जानते हैं ।

मुझे विस्मयका मौक़ा कहाँ था ? मैंने हठात् बात टालनेको हँसकर कहा—मुझे तो बतलाया गया था, आप देश गई हैं ।

सुनकर वह और भी हँस पड़ी । फिर कहने लगीं—क्या आपको अब जिज्ञासा नहीं होती है कि फिर डाक्टर साहब मुझे घरमें क्यों रक्खे हुए हैं ?

मैंने कहा—यह आप कह क्या रही हैं ?

“ असलमें वह मुझे बहुत,—वह बहुत उदार हैं । ”

मैंने कहा—मैंने सुना है—

बोली—अच्छा, आप भी आखिर कुछ सुन सकते हैं ! मेरे बारेमें जो भी खोटा सुना हो, सब सही है । मैं निष्पाप नहीं हूँ ।

“ सुना है, आपको मारा-पीटा भी गया ! ”

सुनकर उनका चेहरा पीला और फक हो आया । घबरा कर उन्होंने कहा—यह आपसे किसने कहा ?

मैंने पूछा—क्यों, यह झूठ है ?

“ डाक्टरने कहा ? ”

मैंने कहा—नहीं तो—

“ तो फिर किसने कहा ?—हाँ, वह झूठ है ।—नहीं, वह कुछ नहीं । मैं उसको सही नहीं कह सकती, तो वह ग़लत नहीं तो क्या है ? और अगर मेरी ग़लतीपर कुछ उन्होंने कह-सुन लिया हो तो क्या यह याद रखनेकी बात है ? आप क्यों यह नहीं सोचते कि मैं एक पराए घरमें इतने दिन रही ! और कोई होता तो स्त्रीको ऐसेमें जीती भी छोड़ता ? उन्होंने तो बस थोड़ा कह-सुन कर जाने दिया । आप उस बातको मनमेंसे निकाल दीजिए । मैं कहती हूँ, जो भी हो, पति मुझे बहुत चाहते हैं । ”

मैंने कहा—अच्छा, जाने दीजिए उस बातको ।

बोली—नहीं, सबूत देती हूँ ।

मैंने कहा—जाने भी दीजिए ।

बोलीं—सुनिए तो । सुनने लायक बात है । ऐसी कथा आपने सुनी न होगी ।

इतना कहकर वह आगे बिना कहे हँसने लगीं । इतना हँसीं, इतना हँसीं कि—

मैंने कहा—बात क्या है ?

हँसते हुए बोलीं—पूरी कहानी फिरके लिए छोड़नी होगी । लेकिन मैं निकली उस शामको, मालूम है, डाक्टर साहबने क्या किया ?

मैंने कहा—क्या किया ?

उत्तरमें बोलना चाहती थीं कि फिर हँसी आ जाती थी । आखिर ज्यों त्यों कृत्रिम गंभीरतासे बोलीं—डाक्टर मेरे बिना बहुत उद्विग्न हो गए । बहुत व्यग्र, बहुत परेशान । उन्हें शायद पछतावा हुआ । उसी सोचमें सीधे वह कहाँ पहुँचे, बताऊँ ? पहुँचे डा० भटनागरके मकानकी देहलीपर । दो और आदमियोंको साथ लेते गए । सोचा होगा कि जाने क्या मौका बने । अंदर जाकर नीचे चौकमेंसे ही खड़े खड़े जोरसे ऊपरकी ओर पुकारकर कहा, ‘ डा० भटनागर हैं ? ’ उस आवाज़पर ऊपर बाल-बच्चे और घरकी स्त्रियाँ और शायद पार-पड़ौसिन आकर कुतूहलसे झाँकने लगी होंगी । बार बार दपटके पूछा, ‘ डा० भटनागर कहाँ हैं ? ’ वह घरपर नहीं थे, पर कहीं पास ही थे । नौकर भागा भागा उन्हें बुलाकर लाया । हमारे डाक्टरने आते ही जोरसे उनके मुँहपर कहा, ‘ मेरी स्त्रीको तुम उड़ाकर ले आए हो । लाओ, निकालकर दो । ’....

यहाँ फिर वह बेतहाशा हँस उठी । हँसते हँसते आँखोंमें आँसू आ गए । बोलों—मैं सच कहती हूँ आपसे । उन्होंने कहा, ‘ मेरी बीवीको तुम उड़ा लाए हो । बताओ कहाँ है ?’ इतना कहकर भटनागरको उन्होंने दोनों हाथोंसे पकड़ लिया । भटनागर बेचारे बड़े चक्करमें पड़े । वह खुद पूछने लगे कि क्या मैं खो गई हूँ ? क्या बात है, कहाँ गई हूँ ? हमारे डाक्टरने उसपर और भी जोर-शोरसे कहा, ‘ मैं सब चालाकी समझता हूँ । अभी घरकी तलाशी दूँगा । ’ भटनागर बेचारे बालबच्चेदार आदमी । अजब मुसीबत उन्हें माछूम हुई होगी । सोचा होगा कि बखेड़ा कौन बढ़ाए । सो उन्होंने अधिकारसे और अभिमानसे काम नहीं लिया । नहीं तो कह सकते थे कि आप दीवाने तो नहीं हो गए हैं । लेकिन भटनागर साधारण भावसे हमारे डाक्टरको ऊपर ले गए । उनके दोनों साथी भी साथ साथ गए । [अकेले जानेको डाक्टर राजी न थे !] समूचा घर देखा । एक एक कमरा और ट्रंक और संदूक । मैं आपसे सच कहती हूँ, ट्रंक देखे और बक्स देखे और बँधे विस्तर खुलवाए ।....आप कहेंगे कि मैं इतनी सूक्ष्म तो नहीं हूँ । यह तो ठीक है । लेकिन क्या जाने कि जादूसे हो गई हूँ !....

कहकर वह फिर खिलखिलाकर हँसने लगीं । पर वह हँसी मुझे हास्यजनक किसी तरह नहीं हो सकी । मेरे मनमें उससे व्यथा ही पैदा हुई । जैसे उसके भीतर हँसीसे दारुण कुछ और हो ।

बोलीं—आप यह पूछते हैं कि बात क्या थी ? बात यह थी कि मेरी पिछली बीमारीमें डाक्टर भटनागर मुझे दो-चार बार देखने आए थे । एक रोज़ डाक्टरने बात बातमें कहा कि भटनागर अच्छा आदमी नहीं है । मैंने कहा, मुझे तो अच्छे आदमी मालूम होते हैं । उन्होंने कहा, तुम खी हो । कुछ समझती नहीं । बाहरकी आँखोंसे देखती हो । पर मैं जानता हूँ कि वह अच्छा आदमी नहीं है । खी होनेकी बात मुझे लगी । मैंने कहा, मुझे तो वह अच्छे ही मालूम हुए । उन्होंने पूछा, हाँ—आँ ? मैंने उत्तर दिया, हाँ, मैं बिना प्रमाण यों ही किसीको बुरा कैसे कह सकती हूँ और भटनागर ज़रूर मुझे अच्छे मालूम होते हैं । बात बढ़ी और वह कहने लगे, समझकर जवाब दो । बोलो, वह तुम्हें अच्छे लगते हैं ? मैंने कहा, हाँ हाँ, अच्छे लगते हैं । तब तो वह पी गए । लेकिन उसी बातपर उनके मनमें शायद गाँठ बैठ गई । तभी तो भटनागरके साथ यह विडम्बना बीती । विचारे कुटुम्ब कबीलेवाले इज्जतदार आदमी !—मैं सोचती हूँ तो अब भी हँसी आती है ।

कहकर वह फिर भी हँसीं । पर इस बार तो वह हँसी स्पष्ट ही करुणाकी याचना-सी करती हुई प्रकट हुई ।

मैंने पूछा—फिर ?

उसी हँसीमें वह बोलीं—फिर क्या, कुछ नहीं । मैं खो गई थी, सो मिल गई । और कहाँ रही, सो ? उँह, उस वृत्तांतमें जाननेकी कोई विशेष बात नहीं है ।—तो इससे आप देख

लीजिए कि डाक्टर किस तरह मेरे-बिना बेसुध हो सकते हैं। यह किसका लक्षण है, बताइए तो ? क्या प्रेमका ही लक्षण नहीं है ?

मैंने बात बदलनेको कहा—आपके ट्रस्टमें उनकी अनुमति तो होगी ही ?

वह इस प्रश्नपर सहसा रुककर फिर बोलीं—हाँ, अनुमति क्यों नहीं है ?

मैंने कहा—सुना है कि वह कहीं दूर जानेवाले हैं ?

बोलीं—हाँ, उनका मन छोटे कामसे नहीं भरता है। वह कोई बड़ा काम उठाना चाहते हैं। जिसमें रुपया हो तो बहुत हो, यश हो तो बहुत हो। खतरा भी फिर चाहे बहुत ही हो।....लेकिन मुझे आप यहीं रोक लेंगे क्या, जाने नहीं देंगे ? देखिए कितना वक्त हो गया है। अच्छा, मैं चली।

मैंने कहा—मेरी कामना है कि डाक्टरकी साहसिकता सुफल हो।

चलते चलते उन्होंने उत्तर दिया कि हाँ, वह साहसी हैं। नहीं तो मैं,—मैं क्या विवाहके योग्य तक थी ?

यह वाक्य सुनकर मैं सन्न-सा रह गया, कुछ समझ नहीं सका। लेकिन कहकर वह तो फिर थोड़ी देर भी नहीं ठहरी, चली ही गई।

७

कुछ दिनोंमें डाक्टर सचमुच वहाँसे चले गए। वह मनमें कोई बड़ा मनसूबा बाँधकर दूर देश गए थे।

यह जानकर और इधर उनका समाचार भी न मिलनेके कारण मैं उस ओर गया, तो कल्याणी मिलीं। मिलीं तो, पर जैसे मन उनका उतरा हो।

मैंने कहा—डाक्टरसाहब गए? क्या एक मुद्दतके लिए गए हैं?

उन्होंने कहा—हाँ। देखिए, कब लौटते हैं।

मैंने कहा—मुझे माफ़ कीजिएगा। आपकी तबीयत तो ठीक है?

बोली—ठीक है।

मैंने अपनी ओरसे समाधानके ढंगपर कहा—आप किसी तरहकी चिन्ता न कीजिएगा।

बोलीं—चिन्ता किस बातकी करूँगी?

मुझे उनकी बातोंसे आश्वासन नहीं मिल रहा था। मैंने कहा—मुझे आशा है कि डाक्टर किसी अनबनके कारण नहीं गए हैं।

बोलीं—मैं भी यही विश्वास करना चाहती हूँ।

मैंने कहा—मैं समझा नहीं।

बोलीं—मैं सब बताती हूँ। अच्छा हुआ, आप आए। सुनिए, न अब कुछ मेरा है, न उनका है। सब जगन्नाथजीका है। जगन्नाथजीके दरबारमें अनबन क्या?

मैंने कहा—मैं और भी कुछ नहीं समझा।

हठात् वह हँसीं। बोलीं—आप ईश्वरको नहीं मानते हैं न। इसीसे सहज ही कोई बात आपकी समझमें नहीं आती

है । मैं क्या करूँ ?

मैंने कहा—हो सकता है, वह मेरे समझने योग्य न हो । जाने दीजिए ।

हँस कर बोलीं—बात बेशक यही है । आप नहीं समझेंगे । फिर भी जो आप पूछने लगते हैं और समझना चाहते हैं उसके लिए मैं बल्कि कृतज्ञ ही हूँ । असलमें मैं खुद बताना चाहती हूँ । कुछकी कुछ समझी जानेमें मुझे सुख नहीं है । वह भी जाने मुझे क्या समझते हैं । लेकिन—खैर । सुनिए—
मैं चुपचाप सुनने लगा ।

“ विवाहसे पहले मैं—खुद थी । विवाह बिना मैं रह सकती थी । मेरा बोझ मुझसे उठ सकता था । फिर भी मैं अविवाहित नहीं रही । चाहे तो कह दीजिए नहीं रह सकती थी । क्यों कि वही होता है जो होनेवाला होता है । पर मैं अकेली अपनेको भारी नहीं थी । मेरी सब किताबें उसी काल लिखी गई । खैर, विवाह हुआ । वह एक कहानी है । पर छोड़िए । विवाहसे स्त्री पत्नी बनती है । पत्नी यानी गृहिणी । पत्नीसे पहले स्त्री कुछ नहीं होती, बस वह कन्या होती है । पर मैं कुछ थी । निरी कन्या न थी, डाक्टर थी । अब सवाल है मेरी शादी और मेरी डाक्टरी, मेरा पत्नीत्व और मेरा निजत्व, ये परस्पर कैसे निभें ? ”

कह कर उन्होंने मुझे ऐसे देखा जैसे मैं हूँ ही नहीं । जैसे मेरे अभावमें दीवारके सामने भी यह सवाल इसी प्रकार रक्खा जा सकता है ।

वह बोलती रहीं—हाँ, सवाल यह है। अब अगर किसीको यह पसंद है कि मैं उसके मनकी गृहिणीकी तरह रहूँ, तो मुझको भी वह नापसंद नहीं है। तब गिरिस्ती सँभालना मेरा काम होगा। सेवाके अतिरिक्त और मेरा वास्ता नहीं, तब मुझे बाहरी काम या बात या आदमीसे सरोकार नहीं। यह ठीक है न ?

प्रश्नमें उत्तरकी अपेक्षा नहीं थी। सो वे आप ही कहती गई—

“सब सोचकर यही मैंने तय किया। तय करके डाक्टर साहबको कह दिया। उनका मुझपर बहुत आभार है। कृपापूर्वक उन्होंने मुझे स्वीकार किया है। मैंने कहा, मैं आपके मनकी गृहलक्ष्मी बन कर स्वयं भी रहना चाहती हूँ। पर वह तभी रह सकती हूँ जब डाक्टरनी न रहूँ। डाक्टर होकर अंतःपुरकी शोभा मुझसे बहुत न बढ़ेगी। उस हालतमें हर किसीके सामने मुँह-उघाड़े मिलना और बोलना होता है। यह आर्य नारीके अयोग्य नहीं है, यह मैं नहीं कहती हूँ। बल्कि उस आर्यपरंपरा-पर चलनेकी मैं अब इच्छा रखती हूँ। स्वामीसे यह स्पष्टतासे कहकर मैं घरके अंदर ही रहने लगी। चौकेमें जाने लगी और दवाखानेका ध्यान छोड़ दिया। पर मालूम हुआ कि इससे कुछ ही दिनोंमें काम बहुत गिर गया है। आमदनी एकदम टूटने लगी। तब डाक्टर साहबको चिन्ता हुई और उन्होंने मुझे समझाया। मैंने कहा—दोनोंमेंसे कोई एक मुझे चुनकर दे दो। पातिव्रत्य या डाकटरी। मैं सेवामें परायण हो जाऊँ, या डाकटरीकी कमाई करके दूँ। दोनों साथ होना कठिन है। पैर दो नावोंपर रहेंगे तो

हालत डगमग रहेगी । और जो मेरे ही चुननेकी बात हो, तो मैं गृहिणी ही रहूँगी, डाक्टर नहीं बनना चाहती । पर अगर तुमको डाक्टरीकी आमदनी भी चाहिए, उसके बिना अगर नहीं चलता हो, तो पातिव्रतकी माँग उतनी कसी नहीं रखी जा सकेगी, थोड़ा उसे उदार करना होगा । लेकिन वह सब क्यों, मुझे डाक्टरी नहीं करनी ।—”

कहते हुए वह थोड़ी हँस आई । लेकिन क्या अब भी उन्हें मेरा ध्यान था ?

“ इम तरह कोई हफ्ते भर मैं नीचे अपनी मेज़पर नहीं गई । डाक्टरका मुँह इस बीच गिर आया । आय शून्य होती जाती थी । तब उन्होंने मेरी बहुत अनुनय की । मैंने कहा— ‘अच्छी बात है, मैं डाक्टरनी बनती हूँ । लेकिन तब समझ लीजिए कि मैं हर किसीसे मिलूँगी । अच्छेसे तो, बुरेसे तो । तब आप मुझपर भरोसा न भी रखें तो भी मुझे रोका नहीं जा सकेगा । और अब यह दवाखाना मेरा होगा । हिसाब-किताब मेरे हाथोंमें रहेगा ।’ डाक्टर इसमें राजी नहीं दीखे । तीन-चार दिन फिर ऐसे ही बीत गए । मैं इन दिनों दवाखाने नहीं गई । वह बड़े चिंतित दिखाई देने लगे । आखिर उन्होंने मुझसे हरप्रकार क्षमा माँगी और जैसे बने प्रैक्टिस करनेपर राजी होनेको कहा । मैंने हँसकर कहा, ‘पैसा मेरे हाथमें रहे, इसमें तुम्हें डर लगता है ? मैं खुद तुम्हारे हाथमें हूँ, तब भी डर लगता है ? अच्छा चलो, मैं पैसा नहीं लेती । लेकिन तब वह तुम्हारा नहीं होगा । वह जगन्नाथजीका है, जो जगत्-भरके

हैं। उनका प्रतिनिधि बन कर ही कोई धनका स्वामी हो सकता है।' डाक्टर साहब ईश्वरको बहक समझते हैं। वह उस बातपर राजी हो गए। मैंने कहा, 'ईश्वर दीनानाथ हैं। इससे जो दीनोंके हितमें किया जाय, ऐसे किसी खर्चमें तुम हाथ नहीं रोक सकोगे। उसके सेवककी हैसियतसे अपने लिए अधिक खर्च नहीं करोगे।' डाक्टर इन्हें कोरी कल्पनाकी भली भली बातें जानकर एक एक स्वीकार करते चले गए। मैंने भी अगले रोज़से डाक्टरीके कामपर आनेकी स्वीकृति दे दी। तब तक मैंने ट्रस्टके विचारको भी मनमें साफ़ कर लिया था। सो अगले दिन लिखी-लिखाई योजना मैंने डाक्टर साहबके सामने रख दी। उनसे विरोध करते न बना। मैं नहीं कह सकती कि विरोध उनके मनमें भी बिल्कुल नहीं था, या था। प्रकटमें उन्होंने कुछ नहीं कहा। तो अब सब रुपया पहले एक जगह जमा होता है। बैंकके हिसाबमें अब मेरा नाम हो गया है। बीमा पॉलिसी रोक दी गई है।....(इत्यादि)।"

अनंतर क्षणक चुप रहकर उन्होंने कहा—इसीसे कहती हूँ कि मैं अब कुछ नहीं हूँ।

मैं यह सब सुनकर कुछ संभ्रममें रह गया। कहा—तब तो डाक्टर साहबके जानेमें कुछ कारण यह भी हो सकता है?

उन्होंने कहा—शायद हो भी सकता है। उन्हें अब यहाँ अपने पुरुषार्थके योग्य कामका क्षेत्र नहीं मालूम हुआ। क्या जाने वह बताना चाहते हों कि देखो, स्त्रीसे पुरुषकी क्षमता कितनी है। उन्होंने कहा था 'तुम सालमें जितना करोगी,

देखना, मैं एक दावमें उससे कई गुना कमा कर दिखा सकता हूँ। तुम किसी भूलमें न रहना।' दवाखानेका हिसाब मेरे हाथ आ जानेसे शायद उन्हें आहत-गर्वकी प्रेरणा हुई है। मैंने उन्हें रोका, पर मेरे रोके वह रुके नहीं। मैंने कहा कि देखते तो हो मेरी हालत। इस समय मुझे कोई तो संरक्षक चाहिए। हाथ जोड़ती हूँ, तुम जाओ नहीं। लेकिन वह मेरे रोए भी नहीं रुके। पुरुषका यही पौरुष तो हमें पराजित कर देता है। मेरी कमाईके आश्रित वह कहीं रह सकते थे!

कहकर मानो वह कष्टकी हँसी हँसी।

अन्तमें मैं चलनेको हुआ तो उन्होंने कहा—क्या आप एक वचन देंगे ?

मैं अपनी जगहसे उठकर खड़ा हो गया था। उनके प्रश्नपर खड़ा ही रह गया, कुछ उत्तर नहीं सोच सका।

“बैठिए। सुनते हैं, बैठिए न।”

लेकिन मुझे समझ न आया कि बैठकर क्या मैं किसी तरहकी कोई सान्त्वनाकी बात इन्हें कहनेको पा सकूँगा।

“नहीं बैठिएगा ?”

मैंने कहा—मैं अब चलूँगा।

निगाह बिना ऊपर उठाए ही वह बोली—अपनी इस हालतमें उनके पीछे मैं किसका सहारा लूँगी यह शायद सोचकर भी आप मुझे बता नहीं सकते, यही न ?

मैंने कहा—आप अनागतका सोच न करें।

बोली—सोच न करूँ, यही कहते हैं न आप ? अच्छा।

धन्यवाद । नमस्कार ।

जिस स्वरमें यह कहा गया उसपर चौंककर मैंने उन्हें देखा । यद्यपि प्रत्यभिवादनमें नमस्कार करनेकी सुध उस समय भी मुझे रह सकी, पर उनकी उस उठी हुई निगाहको देखकर मुझसे और कुछ भी नहीं बन सका, मैं चला ही आया । क्या करता ? उस निगाहके अभियोगको कैसे बचाता ? जैसे उस निगाहसे उन्होंने समूची पुरुष-जातिको अभय दिया, मानो कहा—‘तुम अगर अपनी स्वतंत्रताकी और अपने समाजकी रक्षामें स्त्रीको अरक्षामें छोड़कर असहयोगपूर्वक चले जाना चाहते हो तो चले जाओ । तुम्हें शान्ति मिले । हमारी चिन्ता तुम्हारी बाधा न बने । हम स्त्रियाँ अपना देख लेंगी ।’ पर मानो यह अभय ही उनका अभियोग था ।



एक रोज़ उनका ज़रूरी बुलावा आ पहुँचा । वहाँ गया तो मालूम हुआ कि डाक्टर देश जाकर मुसीबतमें पड़ गए हैं । वकीलकी हैसियतसे क्या मैं कुछ कर सकता हूँ ?

डाक्टरने दो हजार रुपए मँगाए थे । नहीं तो, लिखा था, जाने क्या हो जायगा ।

मैंने कहा—रुपए भेज देने चाहिएँ ।

बोलीं—रुपए न भेजनेका तो सवाल ही कोई नहीं है । लेकिन फिर उसके बाद जल्दी ही और नहीं भेजने पड़ेंगे, इसका आपको भरोसा है ?

मैंने कहा—तो क्या किया जा सकता है ?

बोलीं—आप खुद उधर जा सकें तो पूरा हाल भी मालूम हो जाय ।

अनायास मेरे मुँहसे निकला—मैं ?

उन्होंने किञ्चित् स्मितसे कहा—हाँ ।

उनके उस विश्वस्त अधिकार-भावपर मुझे जाने कैसा मालूम हुआ । मैंने कहा—क्या आप यह संभव मानती हैं ?

बोलीं—मेरे लिए आपका कष्ट उठाना क्या मैं असंभव भी मान सकती हूँ ? आपको काम बहुत है, फीस बहुत है । यही न ?

मैंने कहा—हाँ, यह भी । पर सब कुछ यही नहीं । मेरे हाथसे कोई उपकारका काम न कराइए । वह उपकार उन्हें अपकार हो जायगा । यह क्या मेरे दुर्भाग्यकी बात आप नहीं जानती ? ऐसा हुआ तो मुझे असह्य होगा ।

बोलीं—यह आप कैसी बात कहते हैं ? जानती हूँ, बचनेके लिए तो आप कुछ कह नहीं सकते ।

मैंने कहा—आप ही सोचिए । मैं ग़लत कहता हूँ ?

वह बोलीं—खैर ।—तो फिर ?

मैंने कहा—मैं एक मित्रको बंबई फ़ोन किए देता हूँ । वह वहाँ देखभाल लेंगे ।

उन्होंने मेरा अहसान माना ।

मैंने कहा—वह छोड़िए । अहसान बीचमें आकर फ़ासला डालता है ।

वह बोलीं—आप सब हाल नहीं जानते ।

कहकर देखता हूँ कि दृष्टिमें उनके एक विचित्र कातरता आ गई है। उसका सामना मुझे बहुत कष्टकर होता है। मैंने अपने साथ जोर लगाकर कहा—आप चिंता क्यों करती हैं ?

उन्होंने कहा—आप मानिए या न मानिए, मैं आपसे कहती हूँ कि इस बार मैं नहीं बचूँगी।

मैंने दपटकर कहा—अशुभ न बोलिए।

कहने लगीं—मैं झूठ नहीं कहती।

मैंने कहा—अपने वशसे बाहरकी बात कहना सदा झूठ कहना है। यहाँ बचना किसको है ? लेकिन जीना-मरना जिसके हाथ है, उसीके हाथ है। हम कौन जो उसपर मुँह खोलें ?

वह शून्यको कुछ देर देखती रहीं। अनन्तर बोलीं—लेकिन मैं अभी क्यों जी रही हूँ ?

मैंने कहा—देखिए, जीने-मरनेकी बातें मुझसे न कीजिए। वे वकालतसे बाहर हैं। आपको तकलीफ़ क्या है ?

उन्होंने मुझे स्थिर दृष्टिसे देखकर कहा—तकलीफ़,—कुछ नहीं।

उस दिनके बादसे उनकी तरफ़ मैं यत्नपूर्वक नहीं गया। फ़ोन मैंने बम्बई कर दिया था और इसकी सूचना और अन्य आश्वासन लिख कर आदमीके हाथों भेज दिया था। खुद जाकर कष्ट ही हाथ आता था।

कुछ दिन बाद ख़बर मिली कि डाक्टर आ गए हैं। मैंने सोचा—चलो, यह भला हुआ। बम्बईके मित्रसे मालूम हुआ

था कि वहाँ कुछ बेठब आदमियोंके चंगुलमें वह पड़ गए थे और उसमें काफी रुपया गँवा बैठे थे । रुपया सोच-फि़करकी चीज़ नहीं है, लेकिन उसका देना जैसा सराहनीय होता है, उसका गँवा बैठना उतना ही शोचनीय मादूम होता है । पर हठात् उधरसे मैंने ध्यान अलग खींचा । जब ज़रा सोचता तो कल्याणीकी वह कातर दृष्टि सामने हो आती । और चूँकि मैं उस दृष्टिका मतलब नहीं समझ पाता था इससे मुझे केवल कष्ट होकर रह जाता था । सो मैं नहीं चाहता था कि मन उधर चोर-मार्गसे भी जावे । लेकिन मन भला राजमार्गपर कहीं ठहरता है ?

जो हो, मैं उस ओर नहीं गया । न असरानियोंमेंसे कोई आया । लगभग महीना भर हो गया । शायद और अधिक । कबूल करूँ कि इतनी मुदत उधरकी कोई खबर न पानेसे मैं नाराज़ी अनुभव कर रहा था । श्रीधर बीच बीचमें सुना जाते थे कि मिसेज असरानीकी ख्याति आजकल खूब है और तरह-तरहके सार्वजनिक कार्योंमें वह भाग लेती हैं और पूछी जाती हैं ।

मैंने कहा था—अच्छा तो है ।

उन्होंने कहा था—जैसा अच्छा है, सो कौन जानता है ।

अखबारोंमें उनका नाम अब अक्सर पढ़नेको मिल जाता करता था । उनके आरोग्य-भवनने नगरके विशिष्ट लोगोंका ध्यान अपनी ओर खींचा था । अन्य महिलोपयोगी कामोंमें और साहित्यिक समारोहोंमें वह प्रमुख भाग लेने लगी थीं ।

श्रीधरने कहा था—यह सब जाल है ।

श्रीधर तो शब्दोंको यों ही मुँहसे निकाल देता है । जाल है तो क्या पकड़नेके लिए वह जाल है, यह समझमें न आता था । यों तो आदमीका सारा पसारा ही जंजाल है । पर यह कहनेसे हाथ क्या लगता है ? अपनेको चारों ओर फैलाकर शायद उस फैलावके भीतर आदमी अपने मनको ही पकड़ना चाह रहा है । यह रचता है, वह रचता है, कि इन रचनाओंके व्यूहमें घेरकर अपनेको पकड़ ले । आदमी यही तो करता है । सदासे यही कर रहा है । सृष्टि इसीका नाम है । यही फिर माया है । माया फैलाकर फिर सत्यको उसीके केन्द्ररूपमें खोज लेना है । मायाकी लीलामें भी लीलाकार तो सत्य ही है न ? इससे श्रीधरवाला मिसेज़ असरानीका जाल किसको पकड़नेके लिए है, यह ही मुख्य प्रश्न है । क्या अपने सिवा किसी औरको ? औरको, तो किसको ? और अगर अपनेको पकड़नेके लिए वह है, तो फिर उसमें विपरीत क्या है ? उसके सिवा और कर्तव्य ही क्या है ? मानव क्या कुछ और भी कर सकता है ?

आखिर जब काफ़ी हो गया तो मैं उधर गया । डाक्टर असरानी मिले । वह खुश थे और तबीयतमें उत्साह मालूम होता था ।

मैंने कहा—कहिए, देश हो आए ?

उन्होंने कहा—जी हाँ ।

“ अब फिर तो जानेकी बात नहीं है न ? ”

बाले—जी नहीं । देख लिया कि आदमीकी हाय-हाय व्यर्थ

है । संतोष ही ठीक है ।

मैंने कहा—आप प्रसन्न तो रहे ?

बोले—जी हाँ । सब आपकी कृपा रही ।

बात-बातमें मैंने कहा—इधर मुदतसे मेरा इधर आना नहीं हुआ । सोचा, चलूँ मिल आऊँ । आप उधर आवें तो घर दर्शन दीजिएगा ।

बोले—जखूर जखूर । लेकिन इधर काम बहुत बढ़ रहा है । उन्हें (डाक्टरनी साहिबाको) तो दम मारनेकी फुर्सत नहीं होती । यह-वह, दस काम सिरपर अड़े खड़े रहते हैं । किसे टालो, किसे छोड़ो । लेकिन मैं आऊँगा ।

कल्याणीसे मैं मिल नहीं सका, क्यों कि वह किन्हीं मरीजके साथ व्यस्त थीं ।

अगले दिन जल्दी-जल्दीमें इस असमर्थतापर खेद प्रकाश करने वह घर आई कि मेरे आनेपर भी वह मिल नहीं सकी । उस समय वह उल्लसित मालूम होती थीं । जैसे कोई चिन्ता उन्हें छू नहीं गई है ।

मैंने कहा—मुझे खुद जानना चाहिए कि आपको अवकाशकी कमी है । रोगी कब आपको छुट्टी देते हैं ?

उन्होंने हँसकर कहा—हाँ हाँ । लेकिन आप तो जानते हैं—

मैंने कहा—हाँ, डाक्टरकी मुश्किल मैं खूब जानता हूँ ।

उन्होंने मेरी बातको अनायास अनसुनी करके कहा—आप जानते हैं कि यह सब व्यस्तता प्रपंच है ।

मैंने कहा—मैं यह बिल्कुल नहीं जानता। यह जानता हूँ कि उपयोगी कर्ममें अपनेको भूलकर लगे रहना ही धर्म है।

मोटर चलाते चलाते उन्होंने हँसकर कहा—यह आपकी जानकारी है ? पर भूलना कब तक चलेगा ? मानिए आप, सब प्रपंच है, सब धोखा है।

इसके अनन्तर उनकी निगाहमें मुझे फिर वही कातरताकी झलक दीख आई। पर पलक बीतते ही हठात् दीखा—वह मुस्कुरा भी रही हैं—

“ नमस्कार ! ”

कहा, और मोटर लेकर वह ओझल हो गई।

सच पूछिए तो मुझे उनका उल्लास सुखद नहीं हुआ। जैसे वह भीतर कुछ और हैं। एक चेहरा है, जिसे ओढ़ लेनेसे काम बननेमें मदद मिलती है। एक रंग जो वास्तविकताको अन्यथा दिखा सके। चमक ऊपरी है, भीतरी जाने क्या है। लेकिन फिर भी वह उल्लास इतना स्वाभाविक और अनायास मालूम होता था कि मन यह भी न मानना चाहता था कि वह यथार्थ नहीं है। आखिर फिर यथार्थता क्या है ? देखता हूँ कि खदरकी धोती अब नहीं है, हाथोंमें सोनेकी चूड़ियाँ बढ़ गई हैं और ईयरिंग बहुत कीमती मेलके कानोंमें दीखते हैं। क्या यह यथार्थ नहीं है ?

मुझे वह सब जैसे प्रश्न करता हुआ मालूम होता था। क्या यह उस दिनवाला गरीबीका और गरीबीके हितका व्रत है ? यह मैं क्या देखता हूँ ? क्या यह खर्चको मर्यादित

करनेका प्रमाण है ? निस्संशय वह कमाती हैं तो खर्च कर सकती हैं । कौन हाथ रोकनेवाला है ? लेकिन यह जाहिर करके कि मैं कमाना नहीं चाहती जो कमाई बढ़ाई जाती है, वह भी क्या कमाई है ? क्या वह लूट नहीं है ? सद्भाव दिखा कर पहले परिचय खींचा जाय, साख बनाई जाय, फिर उस परिचय और साखमेंसे पैसे खींचे जायें—यह क्या है ? यह अनीति नहीं है ? दुष्कर्म नहीं है ? है, और श्रीधर ठीक है ।

लेकिन वह निगाह फिर क्या है जो अपने लिए मानो सबसे भीख ही माँगती है ? जो कहती मालूम होती है कि 'हाँ, सावधान, यह धोखा है । पर पहले धोखा मैं ही खा रही हूँ । सो भाई, मुझे क्षमा कर देना । मैं सबकी करुणा चाहती हूँ ।'

इस तरह मेरी कुछ समझमें नहीं आता । सच तो है । अपनी ही नीति समझमें नहीं आती, तो दूसरेकी अनीतिको समझ जानेवाला मैं कैसे हो सकता हूँ ?

तिसपर एक रोज़ डाक्टर असरानी घर आकर मुझसे कहने लगे—आपने उनका मंदिर भी देखा है ?

मैंने कहा—मंदिर ! मंदिर क्या ?

इधर पत्नीके साथ डाक्टर साहबकी साख फिर जम चली है । सब कुछ अब डाक्टरके हाथमें है; क्योंकि जाहिरमें डाक्टर अब बेलाग और तटस्थ रहते हैं । किसी बातमें वह विरोध नहीं करते, इससे पत्नी तो और भी किसी बातका विरोध

नहीं करतीं । बस इतनी-सी युक्तिसे पत्नी उनकी अनुगता हो गई हैं । उनका कहना था कि स्त्रियाँ अपनी नाकसे आगे नहीं देख सकतीं । उन्हें बुद्धि होती है पास तककी । आस-पासके बाहर क्या है, इसकी उन्हें सुध नहीं होती । इसपर विरोध न करो तो उनसे चाहे जो करा लो ।

यह सब भूमिका-रूपमें कहनेके बाद डाक्टरने मंदिरकी चर्चा उठाई थी ।

मैंने कहा—मंदिर कैसा ?

बोले—स्त्रीकी बहक । और कैसा ?

मुझे मालूम हुआ, और डाक्टरने भी नहीं छिपाया, कि असल कारण उनके आनेका यह है कि वह मेरी सहायता चाहते हैं । पत्नीमें इधर जाने कैसे चिह्न प्रकट होने लगे हैं ! व्यवसायका ध्यान उन्हें कम है और न जाने क्या क्या बातें उन्हें सूझने लगी हैं ।

मैंने हँसकर पूछा—कैसे लक्षण और क्या बातें ?

बोले—यही धर्म और पूजा और आत्मा-परमात्माका वहम ।

मैंने कहा—धरम तो अच्छी चीज़ है ।

बोले—अच्छा सब है । सवाल मिकदारका है । नशा भी थोड़ा अच्छा होता है । उससे ताज़गी आती है । लेकिन ज्यादा होकर तो वह नुकसान ही देता है । क्यों साहब ?

मैंने कहा—हाँ, यह तो है ।

कहने लगे—क्या आप कल हमारी तरफ़ आइएगा ?
अवश्य आइए । आपकी बात वह बहुत मानती हैं ।

मैं गया । कुछ देर साधारण बातचीत होनेके बाद अनायास भावसे डाक्टरने कहा—अपना मंदिर तो इन्हें दिखाओ ।

सुनकर कल्याणी कुछ संकुचित दीख पड़ी ।

मैंने कहा—कैसा मंदिर है ?

संकोचपूर्वक बोलीं—कुछ नहीं, कुछ नहीं ।

मैंने कहा—भगवान्‌के राज्यमें तो किसीका भी निषेध नहीं हुआ करता । भगवान्‌की सृष्टिमें सबको जगह है । आपका मंदिर—

बोलीं—जब तक आपके निकट वह मेरा है, आपका अपना भी नहीं है, तब तक आप उस मंदिरमें जानेकी कैसे सोच सकते हैं ? मंदिर म्यूजियम नहीं होता ।

यह कुछ इस तरह कहा गया कि सुनकर मैं चुप रह गया । जवाब नहीं सूझा ।

डाक्टरने कहा—देखनेमें क्या है ? इन्हें भी नहीं दिखा सकोगी ?

“जब तक भगवान्‌के मंदिरको यह अपनेसे पराया गिनेंगे, अपना ही मानकर उस भावसे वहाँ नहीं जा सकेंगे, तब तक मैं क्या कर सकती हूँ । मंदिर तो मनका होता है न ?”

डाक्टर बोले—तुम्हारे देवता और भगवान्, मेरा तो किसीसे भी परिचय नहीं है । मुझे तो तुम रोज़ आरतीमें बिठाती हो ।

“तुम मुझसे अलग नहीं हो । पर इन तक कहीं मेरा

अधिकार पहुँचता है ?”

मैंने हँसकर कहा—न सही । जब पात्र हूँगा तभी मंदिरके दर्शन करूँगा । अभी उत्कंठा भी छोड़ी ।

उन्होंने पूछा—आप ईश्वरको नहीं मानते न ?

मैंने कहा—मैं नहीं जानता कि नहीं मानूँ तो किस प्रकार, और मानूँ तो कैसे ?

बोलीं—तो मन्दिर-मस्जिद, गिरजा-शिवालय, भजन-प्रार्थना सब ढोंग है ?

मैंने कहा—किसीमें भी श्रद्धा रखे बिना मैं उसकी पूजा करूँ तो यह ढोंग होगा ।

वह सहसा बोलीं—मैं आपको ऐसा न जानती थी !

मैंने कहा—तो मुझे कहना चाहिए कि आप गलत जानती थीं । मुझे अपात्र ही जानिए । शायद हम पुरुषोंको धार्मिक पात्रता मिलती ही कम है ।

वह कुछ नहीं बोलीं । पर डाक्टर उत्साहित मात्तम हुए । कहने लगे—इनकी दिनचर्या आप कुछ जानते हैं ? एक बार खाती हैं, चार बार स्नान करती हैं और दिनमें कमसे कम चार घण्टे मंदिरको देती हैं ।

कल्याणीने जैसे इन बातोंकी ओर ध्यान नहीं दिया । वह एकटक नीचेको निगाह किए ही बैठी रहीं । बेशकीमती ईयरिंग और नई-से-नई चालके अनुरूप परिधान पहने इस नारीको उस भाँति नीची दृष्टि किए सामने बैठा देखकर मुझे जाने कैसा मात्तम हुआ । उसने निगाह ऊँची नहीं की ।

जैसे बस सहना ही उसका काम है ।

डाक्टर बताने लगे—ये सबेरे चार बजे उठ जाती हैं । तभी ठंडे पानीसे नहाती हैं । मैं कहता हूँ कि इस तरह स्वास्थ्यको खतरा है, लेकिन चूँकि इनके पत्थरके जगन्नाथजी कुछ नहीं कहते हैं इसलिए कुछ नहीं सुनती हैं । यहाँ अस्पतालमें रोगियोंसे निवृत्तनेमें दो-तीन तो रोज़ बज ही आते हैं । कभी और भी देर हो जाती है । लेकिन इनका हाल है कि यहाँसे जाकर नहायेंगी, पूजा करेंगी, तब अन्न मुँहमें देंगी । चाहे इसमें सबेरा शामसे क्यों न मिल जाय । मैं कहता हूँ कि यह धर्म है कि आफ़त है ?

कल्याणी यह सब सुनती हुई निगाहको मेज़पर उसी तरह एकटक बाँधे अचल भावसे बैठी रहीं ।

डाक्टर कहते रहे—और मेहनतका यह हाल है कि ठीक सात बजे अस्पतालमें आ जाती हैं । आराम जरा नहीं लेती, न किसीको लेने देती हैं । कहती हैं कि सूरज आस्मानमें आराम लेता है ? ईश्वरके राजमें किसको आराम है ? सो दिनमें विश्रामका नाम नहीं । हफ़्तेमें अगर दो नहीं तो एक उपवास तो होता ही है । आज एकादशी है, तो कल पंचमी है ।—

“ बस हुआ । अब आप चुप रहिए । ”

कल्याणीने यह कुछ इतने जोरसे कहा कि मैं हैरतमें रह गया । देखता हूँ कि कहकर वह काँप आई हैं और अपना उद्वेग उनसे सँभाले नहीं सँभल रहा है ।

“ आप जिस बातको नहीं जानते और इसलिए मानते

भी नहीं है, उसपर फिर टीका क्यों करते हैं ? चुप रहिए । आप चाहते हैं—आप क्या चाहते हैं ?—”

उनके ओठ काँपकर नीले पड़ आए—

“ क्या चाहते हैं आप ? यह कि मैं मर जाऊँ ? ”

डाक्टर गुमसुम स्तब्ध भावसे देखते और सुनते रह गए । मैं भी इस सहसा उद्वेगको समझ नहीं सका । पिछली बात-चीतमें पत्नीके प्रति डाक्टरकी चिन्ता और सहानुभूति ही प्रकट होती थी । इससे पत्नीके आक्रोशपर उस समय डाक्टर हतबुद्धि बने निर्दोष अभियुक्त सरीखे दीख पड़ने लगे ।

पर देखता क्या हूँ कि इसपर पत्नीकी वाणी कुछ और भी तीखी हो गई है । वह पतिकी ओर मानो चीख कर बोलीं— तुम साफ़ साफ़ कह क्यों नहीं देते हो कि तुम क्या चाहते हो ? मुझे तिल तिल कर बेचना चाहते हो,—सो वह हो तो रहा है । आखिरी साँस तक मेरा बिक जायगा, तब भी मैं इंकार नहीं करूँगी । लेकिन इसके बाद तुम मुझे अपनी तरह रहने क्यों नहीं देते हो ?....अच्छा, तो मैं अभी अपनी सब मूर्तियाँ तोड़े देती हूँ । बस ? इससे तो तुम्हें चैन पड़ेगा ?—

इतना कहकर वह झपट कर वहाँसे चल पड़नेको हो गई । यह सब ऐसे अप्रत्याशित भावसे घटित हुआ कि क्या कहूँ । डाक्टर असरानी तो चित्र-लिखे-से हो आए । स्थितिको विषम देखकर मैंने अपनी जगह खड़े होकर गुरुतापूर्वक कहा— बैठिए । सुनती हैं—जाती कहाँ हैं ? आप कहीं नहीं जाएँगी ।

वह क्षण-भर मुझे देखतीकी देखती रह गई । मानों बिंधी हरिणी हों। बिंध कर ही बाधिन बन उठी हों, लेकिन हों प्रकृत हरिणी ही । देखते-देखते सहसा वह फिर वहीं धपसे अपनी कुर्सीमें बैठीं क्या बल्कि गिर गई और सामने शून्यमें निगाह गाड़ देखने लगीं । देखती रहीं, देखतीं रहीं । फिर उच्छ्वासके साथ बोलीं—मैं क्या करूँ ? क्या करूँ ?

इतना कहकर, मुँह हाथोंसे ढँक, वह फफक-फफक कर रोने लगीं ।

मेरी समझमें कुछ न आया । डाक्टरके लिए मेरे मनमें बहुत कष्ट और बहुत सहानुभूति हो आई ।

थोड़ी देर कोई कुछ नहीं बोला । अनंतर उन्होंने मुँहपर-से हाथ उठाकर कहा—आप जाइए ।

उस चेहरेको देखकर मैं उस वाक्यकी अभद्रतापर अपना अपमान भी तो अनुभव न कर सका, वह ऐसा करुण था । उसपरके आँसू अभी नहीं सूखे थे और उस चेहरेसे निकली हुई प्रार्थना आज्ञा थी, और आदेश भी अनुनय था ।

९

अगले इतवारको वह घर आई । अकेली थीं । लेकिन इस बार पहलेकी भाँति सीधी अन्दर जानेको उत्सुक नहीं थीं । मुझसे कहा—मैं अधिक न ठहर सकूँगी । यों ही एक बातके लिए आई हूँ ।

मैंने कहा—कहिए ।

बोलीं—आप यह नहीं मानते हैं न कि भविष्य हमें पहलेसे दीख सकता है ?

मैंने कहा—नहीं मानता । लेकिन—

“ लेकिन मैं आपको कहती हूँ कि यह सच है । मुझे कई बार आगेकी सूचना मिल गई है । तब तो मैं उसे सपना कहकर टालती गई । लेकिन हर बार आगे ठीक वही होनेमें आया । ऐसे कई अनुभवोंके बाद अब मैं अपना अविश्वास नहीं करूँगी, नहीं कर सकती । सुनिए, इस वर्षके आगे मैं न जिऊँगी । ”

मैंने कहा—ऐसा न कहिए । मैं पहले भी आपसे कह चुका हूँ कि अनागत जाननेका हक हमारा नहीं है ।

साग्रह बोलीं—नहीं, यह आप न समझें कि मरनेकी कोई दहशत मुझे है । मैं भला किस विरते मरना न चाहूँ ? लेकिन बालक अभी छोटे हैं । हाँ, मैं यह कहने आई थी कि मेरे पीछे क्या आप छोटीको अपने पास ले सकेंगे ? बड़ी तो सदाकी रोगिणी है । मेरे बाद उसे भी अधिक जीना नहीं होगा । पर छोटीका मुझे खयाल होता है । आपसे कहती हूँ, क्यों कि उनसे कहनेको मेरा मुँह नहीं है ।

मैंने कहा—सो तो ठीक है । लेकिन वह सब मैं सुनना नहीं चाहता ।

“ मैं आपपर इतना भरोसा नहीं रख सकती ? ”

“ लेकिन अपना भरोसा खोनेका तो आपको कोई अधिकार नहीं है ।—चलिए, आप अन्दर चलिए । ”

उनका चहरा गिर गया । धीमेसे बोलीं—आप मेरा विश्वास नहीं करते ? अ-च्छा—

यह 'अच्छा' उन्होंने इतने उच्छ्वसित भावसे कहा कि मैं उसके लिए तैयार न था । मैं अपनी जगह खड़ा हो गया । कहा—छोड़िए, छोड़िए । चलिए, अन्दर मिल तो लीजिए ।

उन्होंने अपने हाथकी घड़ीको देखा और कहा—मुझे आज चार बजे एक मानपत्र लेना है । वहाँ पहुँचने नहीं दीजिएगा ?

मैंने कहा—वह होगा । लेकिन आप अंदर तो चलिए ।

बोलीं—होगा नहीं, है । आपको कुछ ख़बर नहीं रहती है । आजकल मुझे जितना मान-सम्मान मिल रहा है, ख़बर हो तो आप ईर्ष्यासे घायल हो जायँ ।

कहकर वह हँसने लगीं ।

मैंने कहा—अख़बारमें नाम तो आपका देखा करता हूँ । मेरी ईर्ष्याको तो उतना ही बहुत है ।

हँसकर बोलीं—अख़बारी रिपोर्ट तो अधूरी भी नहीं हुआ करती । अपनी आँखों पूरी असलियत देखिए तो आपको पता लगे । मैं कितनी महामाननीया हूँ, महान हूँ, कोकिला हूँ और ध्वंस्तरीकी अवतार हूँ : आपको यह मालूम नहीं है तो कुछ भी मालूम नहीं है ।

मैंने अनायास कह दिया—ओ-हो !

वह बहुत हँसी और बोलीं—और नहीं तो क्या ? कुछ यों ही न समझ लीजिएगा !

मैंने कहा—निश्चय रखिए, मैं आपसे डरना आरंभ करना

चाहता हूँ ।

बोलीं—क्यों नहीं । पापसे भय चाहिए ही ।

उनके इस तरहके उत्तरके आगे मैं विवश हो जाता हूँ ।
मैंने कहा—आप बातके मतलबको न जाने किधर ले जाती हैं ।

बोलीं—छोड़िए भी ! लेकिन आप जानते हैं कि मैं कैसे
महिमामयी बनी जा रही हूँ ?

मैंने कहा—जाननेको उसमें क्या है ? सुकर्मसे और क्या ?
प्रतिभा कहिए, चाहे भाग्य ।

बोलीं—अजी, भाग्य-प्रतिभा नहीं । सब डाक्टर साहबकी
बदौलत ।

मैं इस बातको कुछ नहीं समझा । लेकिन उन्होंने जल्दी
मचाकर कहा—आप नहीं समझेंगे और मुझे अपना मानपत्र
खोना नहीं है । चढ़ें, चलने दीजिए ।

मैंने कहा—मैं जानता हूँ कि डाक्टर साहब सब मान
आपके लिए चाहते हैं । अपने लिए उन्हें रत्तीभर स्पृहा
नहीं है ।

बोलीं—यह सच है ।

मैंने कहा—तब तो मैं उनसे अवश्य ही ईर्ष्या करना
चाहता हूँ ।

बोलीं—ईर्ष्याकी बात ही है । लेकिन आप उनको न
पा सकेंगे ।

“ मैं आपको ही कब पा सका हूँ ? ”

कहते कह गया, पर स्वयं अपने कानों उस वाक्यको सुनकर

मैं तभी ठहर गया। फिर शीघ्रतासे बोला—देखिए, आप संकुचित न हूजिए। मेरा मतलब—

किंचित् हँसकर वह बोलीं—व्याख्याद्वारा मतलब न खोलिए। मुझे ग़लतफ़हमी न होगी। मैं ग़लत समझ सकने योग्य होती तो बात ही क्या थी। मैं जानती हूँ, मैं कितनी दयाके योग्य हूँ। यह भी जानती हूँ कि आप यह जानते हैं। मान-सम्मान सब झूठा है। सब छल है।

मैंने कहा—आप अपनेपर कठोर न हों।

बोलीं—मैं बतलाती तो हूँ, सुनिए। डाक्टर साहब दान देते हैं, सो संस्थाएँ मुझे मान देती हैं। इससे संस्थाओंको लाभ होता है, हमें भी लाभ होता है। परस्पररोपकार ! बताइए, इसमें ग़लत क्या है ? तिसपर मुझे अपनी कीमतके बढ़नेमें क्यों झिझक होनी चाहिए ? पर आप कुछ और न मानिएगा। मैं हूँ एक इन्वेस्टमेंट।

मैंने देखा कि वह आत्मलांछनापर ही आ तुली हैं। मैंने कहा—अच्छा, बैठिए तो।

वह विलक्षण भावसे मुस्करा कर बोलीं—आपकी नीयत नेक नहीं है। मैं मिलता हुआ सम्मान छोड़नेवाली नहीं हूँ। चार बजते हैं और मुझे अब चलना चाहिए। कहकर वह चलनेको उद्यत हो गई।

मैंने विनोदपूर्वक कहा—मुझे साथ चलनेका निमंत्रण क्या आप भूलकर भी नहीं दे सकतीं ? मैं भी यश-वैभव देखता।

उन्होंने सार्चर्य कहा—सच, क्या आप चल सकेंगे ?

मैं सोचती थी कि बच्चोंका तमाशा है, आपको क्या भला लगेगा ?

मैंने कहा—झूठे भी निमंत्रण आप देतीं, तब मुझे सोचनेका मौका था । अब तो—

उन्होंने किंचित् मंदतापूर्वक कहा—मैं जानती हूँ । आप चलनेवाले नहीं हैं ।

मैंने हँसकर कहा—जानती तो आप उपयोगी बात हैं । यह साहित्यसभाका मानपत्र है न ?

हँसकर बोलीं—हाँ-आँ ।

मैंने पूछा—तब तो इधर आप कुछ लिखती भी रहीं मादूम होती हैं ।

बोलीं—जीवन ही दुःखकी कविता है । अतिरिक्त कविता अब क्या लिखूँ ? नहीं, आप मानिए मैंने कुछ नहीं लिखा । धंधेसे छूटूँ तब तो आत्माकी सोचूँ । पर देखिए, आप मेरा चारका समय चुकाना चाहते हैं । आपकी कविताके पीछे मानपत्र गँवानेवाली मैं नहीं हूँ ।

इस बार नमस्कार करके वह बिल्कुल नहीं रुकीं, जैसे कि पल-भर देर हुई कि सब बना बिगड़ जायगा ।

वह दिन दो और बातोंसे स्मरणीय बन गया ।

पत्नीके जानेके कुछ अनन्तर पति हमारे यहाँ आ पहुँचे । वह व्यग्र थे । सामान्य शिष्टताके निर्वाहकी चेष्टा मानो उनके लिए बहुत हो रही थी । उन्होंने पूछा—क्या वह यहाँ आई थीं ?

मैंने कहा—हाँ, अभी ही गई हैं ।

“ कितनी देर हुई ? ”

“ हुए होंगे पंद्रह-एक मिनट । ”

“ कहाँ गई ? ”

मैने कहा—चार बजे साहित्य-सभाके समारंभमें शायद उन्हें पहुँचना था । वहीं गई होंगी ।

“ नहीं, वहाँ नहीं पहुँचीं । वहाँसे तो मैं आ रहा हूँ । ”

मैने कहा—शायद आपके पीछे पहुँच गई हों । या अब पहुँचती होंगी ।

उन्होंने हवाको थप्पड़-सा मारते हुए कहा—यह ठीक नहीं है । समयका ध्यान रखना चाहिए । आप कह सकते हैं, वह वहीं गई हैं ?

मैने कहा—मेरा ऐसा ही अनुमान है ।

मुझसे डाक्टरकी उद्विग्नता कुछ कम नहीं हुई जान पड़ी, कुछ बढ़ भले गई । लेकिन मैं क्या करता ? निरुपाय डाक्टर वापिस चले गए ।

उसी दिन संध्याके अनंतर श्रीधरने आकर एक अघटनीय घटना मुझे ला सुनाई ।

मैने कहा—यह क्या कह रहे हो जी, श्रीधर ?

उसने कहा—जिसने आँखों देखा है उसीकी कही सुना रहा हूँ । डाक्टरने खुले रास्ते जूतों तकसे उन्हें मारा । ताँगेमें बैठी थीं । उन्हें खींच खींच लिया । चलती सड़कपर तमाशाई न जाने कितने जुड़ गए थे । देखनेवाला कोई एक तो था नहीं । भीड़की भीड़ थी ।

इस सूचनापर अपने लोभको खाली करते हुए मैंने कहा—झूठ कहते हो ! भला इतनी भीड़मेंसे कोई आदमी मदद न करता ?

श्रीधर कहने लगा—मददको तो सुनते हैं कोई बड़ा था । पर भीड़मेंसे ही एकने कहा, औरत-मर्दके बीच क्यों पड़ते हो जी । सो वह आदमी ठिठका रह गया । तिसपर मदद कोई किसकी क्या करता ? वह मदद चाहती ही नहीं मालूम होती थीं । चुपचाप पिटती रहीं । जैसे अपने पिठनेसे सहमत ही हों ।

“ यह कबकी बात बताते हो ? ”

“ कोई छः बजा होगा । ”

मैंने कहा—श्रीधर तुम गप लगाते हो । उस समय तो साहित्य-सभाका समारंभ चल रहा होगा ।

श्रीधरने कहा—कैसा समारंभ ! मैं खुद वहाँ निमंत्रित था । साढ़े-चार बल्कि पाँच तक वहाँ मौजूद था । श्रीमती असरानी जब वहाँ नहीं आती दीखीं, तो मैं चला आया । कार्यक्रम भी मुलतवी हो गया था ।

मैंने कहा—श्रीधर, यह कैसी बात कर रहे हो ? अच्छा, डाक्टर वहाँ थे ?

श्रीधरने कहा—खूब ! वह नहीं थे तो था कौन ? शुरूमें कुछ देरको वह वहाँसे गैरहाज़िर हुए थे, फिर आ पहुँचे थे । उन्हें बहुत बुरा लग रहा था और झल्लाए दीखते थे ।

मेरा मन इस घटनाकी यथार्थताको स्वीकार नहीं करना

चाहता था । मैंने निरुद्देश्य भावसे कहा—तो ?—

“ तो मैं क्या जानूँ ? ” श्रीधरने कहा, “ मैंने जो हुआ, सुना, सो सुना दिया । ”

उस सारी दुस्सूचनापर मुझसे और कुछ नहीं बना तो मैं श्रीधरको दपटने लगा । कहा—क्या बाहियात बकते रहते हो जी । सब झूठ बात है । नहीं । बस हुआ । सुनो, कान दो हैं, मुँह एक है । सुना हुआ सब कहते नहीं फिरना चाहिए । बस, बस । तुम तो सदा गपकी टोहमें रहते हो ।

श्रीधर दपट सुनकर ब्रेखटके मेरे मुँहपर हँसता रहा । बोला—आप विश्वास नहीं करते तो मेरे पास इलाज क्या है ? मैं विलायत पास डाक्टर तो हूँ नहीं ।

मैंने कहा—श्रीधर, चुप रहो ।

बोला—अच्छा लीजिए, मेरा कहा सब झूठ है । सिरसे पाँवतक झूठ । बस, अब तो सच हुआ ?

जिरह करते हुए मैंने कहा—वह होती तो मोटरमें न होती, ताँगेमें क्यों होती ? और डाक्टर उनका बहुत मान करते हैं । नहीं नहीं, सब गप है ।

श्रीधरने भलमनसाहतसे कहा—जी हाँ, गप ही है । आप परेशान न हों ।

मैंने कहा—सच कहो, जो कहता था उसने अपनी आँखों भी देखा है ? अपनी ही आँखों ? तुम जानते नहीं भाई, ऐसी बातोंमें तिलका ताड़ बनते देर नहीं लगती ।

श्रीधरने कुछ भलमनसाहतसे कहा—जी हाँ, वह बात झूठ

है । मैं तो हँसी करता था ।

मैंने पूछा—तो उनकी क्या हालत है ? बहुत चोट आई है ?

श्रीधरने कहा—यह हो क्या गया है आपको ? अभी कहते हैं, झूठ है । अभी पूछते हैं, बहुत चोट है ?

मैंने कहा—श्रीधर, दुष्टता छोड़ो । सच बताओ ।

मेरी ओर देखकर श्रीधरने कहा—तो क्या जाकर मैं अभी सही और पूरी खबर लाकर दूँ ?

मैंने कहा—हाँ हाँ, जाओ भाई ।

श्रीधर गया । उसके लौटनेपर मालूम हुआ—घटना सची है । उन्हें चोट खासी आई बताते हैं । किसी मरीज़को देखकर लौट रहीं थीं कि यह अघट घटित हुआ ।

सब सुनकर श्रीधरकी ओर देख कर मैं निरुद्देश्य भावसे पूछ बैठा—क्यों ?

श्रीधर मेरी ओर अचरजसे देख उठा । उसने कहा—क्या यह भी मुझे बताना होगा कि क्यों ?

कुछ सोचकर मैंने पूँछा—अच्छा, किस मरीज़के यहाँसे लौट रहीं थीं ?

“ कहते हैं कि किसी डाक्टरकी स्त्रीको देखने गई थीं । उनको सख्त दर्द था । उन्हींके पीछे साहित्य-सभाको, उन्होंने भुला दिया था । ”

मैंने उत्सुकतापूर्वक कहा—किसी डाक्टरकी स्त्रीको तुमने बताया न ?

“ हाँ । यही माझम हुआ है । ”

डाक्टरकी स्त्री ! इसपर एकाएक जैसे अव्यक्त मुझे व्यक्त हो गया । मेरे मुँहसे निकला—ओह, यह बात है !

इस उद्गारमें मेरे मनका क्लेश भी प्रकट हुआ होगा, क्यों कि श्रीधरने इसपर मुझे देखकर चिन्तापूर्वक कहा—क्यों क्यों, क्या बात है ?

मैंने कहा—कुछ नहीं, कुछ नहीं ।

उसने साग्रह कहा—कुछ तो ?

बिना जवाब दिए ही मैंने कहा—श्रीधर, अब वह सब घटना सच हो सकती है ।

श्रीधरने जानना चाहा—अब सब सच हो सकनेका क्या मतलब है ?

लेकिन मेरा मन भारी था । कुछ कहने-सुननेको भी जी न होता था । डाक्टर भटनागरवाली पिछली बात मुझे याद हो आई थी । लेकिन उसपर मैं क्या मुँह खोलता ?

१०

उसके बादका अनुभव नया हुआ । बीचमें काफी दिन टाल कर मैं इस बार उधर गया था । हमारे क्षेत्र अलग थे । इससे होता तो इच्छापूर्वक ही मिलना होता था । यों एक शहरमें होकर भी परस्पर दुर्लभता थी ।

खैर, इस बार मैं उधर गया तो डा० असरानी वहाँ थे नहीं और श्रीमती असरानी मुझसे मिली नहीं । कहलानेपर मुझे भीतरसे उत्तर भेज दिया कि इस समय उन्हें अवकाश

नहीं है, मरीज़से बात कर रही हैं । मैं लौट आया ।

अगले रोज़ वह घर आई । पहलेकी भाँति सुसज्जित थीं और नाराज़ थीं । आकर उन्होंने तीखेपनसे कहा—आप अपमान नहीं चाहते हैं तो आइंदा उधर मत आया कीजिए ।

मैंने भी किंचित् रूखेपनसे कहा—क्या यही काफ़ी अपमान नहीं है ?

बोलीं—हो सकता है । लेकिन किसका अपमान होता है किसका नहीं, इसका मुझे किसीको हिसाब नहीं देना आता है । बताइए, आपका मुँहसे क्या काम है ? आप मरीज़ हैं ? कोई आपके यहाँ मरीज़ है ? आप किसी मरीज़को लेकर आए थे ?—

मैंने कहना चाहा कि—

लेकिन सब टालकर बीचमें ही वह बोलीं—जी नहीं, इसमें कोई जवाबकी बात नहीं है । मैं अभी यह कहने आई थी कि जो हुआ सो हुआ । अब आप उधर न आएँ । न मैं इधर आऊँगी ।

वह उस समय उद्विग्न मालूम होती थीं और कटिबद्ध । प्रकट करना चाहती थीं कि उन्हें जल्दी है । लेकिन कहते कहते वह सोफेपर बैठ गई ।

मैंने कहा—अच्छी बात है । मैं अब गलती नहीं करूँगा ।

“ हाँ, कोई जख़रत नहीं है । दो दिन बाद सब सबको भूल जाएँगे । इसलिए इसमें कोई बुरा माननेकी बात नहीं है । ”

मैंने कुछ नहीं कहा ।

कुछ देर चुप रहकर वह बोलीं—आप चुप क्यों हैं ?

मैं सुनकर उनकी ओर देखता ही रह गया। उत्तर क्या देता ?

“ आप शायद मुझसे बात करना नहीं चाहते। ”

कुछ कहनेके लिए मैंने कहा—क्या बात ?

“ ओः यह भी मैं बताऊँ कि क्या बात ? अच्छा, बताती हूँ। बताइए, जिंदगी क्या है ? हम क्यों जीते हैं ? मैं क्यों जीती हूँ ? बताइए, मैं क्यों जीती हूँ ? ”

मैंने कहा—ऐसी बात बताना तो क्या, मैं सुनना भी गवारा नहीं करना चाहता।

“ आप नहीं बता सकते। लेकिन मैं बताती हूँ। मैं इस पेटके बच्चेके लिए जीती हूँ। ”

कहकर कुछ ऐसी कातर क्लिष्ट निगाहसे उन्होंने मुझे देखा कि मुझको नहीं सूझा कि मैं क्या करूँ, या क्या कहूँ।

“ बस, यही अभाग है जो मुझे मरने नहीं देता। मैं मरी तो वह भी नहीं जनमेगा। इससे मैं मर भी तो नहीं पाती। ”

मैंने जोरसे कहा—चुप हूजिए। क्या बहकी बातें कहती हैं।

इसपर थोड़ा हँसकर वह बोलीं—बहकी नहीं, मैं सच बात कहती हूँ। इसीने मुझे कैदमें डाल रखा है। नहीं तो मैं आज़ाद हो सकती। लेकिन वह भी तो बेचारा मेरी कैदमें है। उस अनजनमेपर मैं गुस्सा क्या करूँ। पर मैं पक्का जानती हूँ। उसको मेरी कैदसे छुटकारा मिला कि मैं भी अपनी कैदसे छुटकारा पा जाऊँगी।

मैंने कहा—फिर वही बात ! छोड़िए उसे ।

“ आपको इसमें शक है ? ”

मैंने कहा— अच्छा, उठिए । क्या इधर-उधरकी सोचा करती हैं ? या उन्हें ही यहाँ बुलाऊँ ? अच्छा ठहरिए, मैं अभी आता हूँ ।

मुझे कमरेसे निकलता देखकर वह बोलीं—ज़रा रुक जाइए ! मुझे कहना यह है कि आप उस बच्चेका खयाल रखिएगा । आप खयाल रखिएगा न ?

उस समय मैंने पास जाकर बाँह पकड़कर उन्हें उनकी जगहसे उठाया ।

उन्होंने कहा —यह आप क्या करते हैं ?—हाथ पकड़ते हैं ?

फिर हँसकर बोलीं—डाक्टर साहब नहीं हैं, इसीलिए ?

मैंने कहा—चलिए, चलिए । अन्दर चलिए ।—अजी सुनना । देखो, यह कौन आई हैं ।

पत्नीसे मिलकर, हमारे घर रहकर, कल्याणी धीमे धीमे बाहरका बहुत कुछ भूल गई । वह सावधान और स्वस्थ हो आई और हिलमिलकर खुशीकी बातें करने लगीं । उन्होंने डाइवरसे कहकर कान्वेंटके स्कूलसे अपनी दोनों लड़कियोंको छुट्टी होनेपर सीधे हमारे घर ही बुलवा लिया । फिर तो रात तक नहीं गई । ऐसी खुश दीखीं कि खूब । सब बच्चोंको तरह तरहके खेल खिलाए । अँग्रेज़ीका इम्तहान लिया । उनके अजायबघर टटोलकर देखे । पियानो बजाया और ग्रामोफोन पर कहकहेवाला रिकार्ड कई बार चढ़ाकर सुना और उसकी

नकलपर उसी भाँति कहकहे पर कहकहे लगाए ।

बाँचमें मैंने रोका भी कि आज मरीजोंकी सुधि नहीं ली जायगी क्या ?

बोलीं—मरीज कभी अपनी सुध भी तो ले ।

उस रोज़ सबका खाना-पीना हमारे यहाँ साथ ही हुआ और बच्चे आपसमें ऐसे हिल-मिल गए कि छोटी तो जानेके वक्त जाना ही नहीं चाहती थी ।

चलनेको तैयार होकर छोटीको उन्होंने कहा—क्यों री, चलेगी नहीं ?

वह हमारे घरकी मुन्नीके गलेमें बाँह डाले खड़ी थी । उसने कहा—हम तो नहीं जाते ।

उसकी माँने पूछा—यहीं रहेगी ?

इसपर उसके एवज़में उसके गलेमें बाँह डाले हुए हमारी मुन्नीने कहा—हाँ, यहीं रहेगी । छोटी नहीं जाएगी । सब जाओ ।

छोटी भी बोली—मैं तो यहाँ मुन्नीके साथ रहूँगी ।

इसपर डाक्टरनी माँने एकदम बढ़कर छोटीको उठा लिया । उसे चूम कर कहा—तू तो पगली है । स्वर्गमें क्या सब रह सकते हैं ?

छोटीने कहा—तो हम मुन्नीको भी घर ले चलेंगे ।

इसपर छोटीको उतारकर उन्होंने मुन्नीको गोदमें उठा लिया । उसे भी चूमकर कहा—यह ठीक है । बोल, चलेगी मुन्नी ?

मुन्नी चलनेको एकदम राजी थी ।

इस भाँति देखा गया कि बच्चोंमें खूब अपनापा हो गया है । इतना कि एक दूसरेको बिदा देनेमें उन्हें बड़ी कठिनाई हो रही है, बड़ी कठिनाई ।

चलनेको उद्यत कल्याणीने कहा—अच्छा, आजके दिनके लिए मैं आप लोगोंका बहुत बहुत धन्यवाद मानती हूँ ।

मेरी पत्नीने कहा—अच्छा । आप कभी कभी ऐसे ही आ जाया कीजिए न ?

उन्होंने कहा—अच्छा । भाग्य होगा तो क्यों न आऊँगी ।

चल पड़ीं तब उन्होंने मुझसे स्पष्ट शब्दोंमें धीमे-से कहा—आजके लिए मुझे क्षमा कीजिएगा । कहकर जैसे उनकी आँखोंमें नमी आ गई, गलेमें आवाज़ रुँध आई । भरे कंठसे बोलीं—आप अब उधर मत आइएगा । क्या फायदा ? वृथा आपके चित्तको कष्ट होगा ।

अगले दिन हमारे यहाँ काफ़ी उपहार लेकर एक आदमी आया । पहचानते हुए भी मैंने लानेवालेको कहा—क्या है ? किसने भेजा है ? क्यों भेजा है ?

उसने कहा—मैम साहबने भेजा है और सलाम बोला है ।

मैंने गुस्सेमें कहा—क्यों ?

दरबान जवाबमें चुप खड़ा रहा, जिसपर मुझे नरम हो आना पड़ा । कहा—अच्छा, जाओ ।

बच्चोंके लिए उसमें तरह-तरहके खेल-खिलौने थे । पत्नीने एक एकको निकालते हुए और देखते हुए कहा—यह इतना

सब सामान उन्होंने किस लिए भेजा है ?

“ तबीयत, और क्या ? ”

“ तो क्या इन्हें रख लें ? ”

“ नहीं तो फिर ? ”

वह बोलीं—पचास-साठ रुपएसे कमका सामान नहीं मालूम होता ।

मैंने कहा—अब तो सब भुगतना ही होगा । न रखकर उन्हें नाहक तकलीफ़ तो नहीं दी जा सकती न ।

पत्नी हमारी समझदार गृहिणी हैं । बोलीं—यह उस भली मानसको सूझा क्या ?

मैंने कहा—समझ लो, अमीरीकी सनक है ।

अमीरीके नामपर पत्नीमें कुछ गर्मी हो आई । उन्होंने कहना चाहा कि अमीर कोई होगा तो अपने घरका होगा । उसमें गुमान रखनेकी क्या बात है । पर खुलकर कहा नहीं ।

असलमें किसीको अमीर सुनकर पत्नीमें बिगाड़ हो आता है । वह अमीरीसे उदास हो चुकी हैं । देख चुकी हैं कि मैं जो हूँ, उसके अतिरिक्त नहीं हो सकती । अमीर बननेके उनके उपदेश और मेरे स्वप्न ठंडे पड़ गए हैं । अब न स्वप्नमें और न उपदेशमें गर्मी शेष है । इससे शब्दकी अमीरी भी पत्नीको कानों नहीं सुहाती । अमीरीकी बात उठनेपर यह तो जैसे तैसे मैंने सँभाल लिया, नहीं तो एक साँस सारा सामान फेर देनेपर ही उतारू वह हो गई थीं ।

बोलीं—क्यों जी, वह यहाँ क्यों आती जाती हैं ?

मैंने कहा—मुझे अंतर्गामी तुमने कबसे समझा है ?

बोलीं—खी तो भली मालूम होती है । मिजाज उसमें नहीं है । पर बात क्या है ? परेशान क्यों मालूम होती है ? क्या बहुत दुखियारी है ?

मैंने कहा—क्यों, नहीं तो । तुम यह कैसे कहती हो ?

“ कहती हूँ आँखोंसे देखकर, और कैसे कहती हूँ ? ”

मैंने कहा—आँखोंसे तो मैं यह देखता हूँ कि मोटरमें चलती हैं । और फेंसी कपड़े पहिनती हैं और खूब सिंगार है और मनचाही आमदनी है और नाम है और—

पत्नीने भ्रुकुटियोंमें वक्र डालकर कहा कि तुम कुछ नहीं जानते—

मैंने कहा—बताओ न कि इसमें क्या जानूँ ? तुम कबसे मोटर गाड़ीको तरसती हो । मोटर हो जाय तो, कहो, तुम सुखी हो जाओ कि नहीं ?

पत्नी इसपर तुनक गई । कहने लगीं कि तुम रखो अपनी मोटर अपने पास । मुझे कुछ नहीं चाहिए । कहा होगा कभी मोटरको तो तुम्हारी ही खातिर । जिससे तुम्हारी इज्जत बढ़े । मुझे क्या उस सदा-सुहागनमें आग लगानी है ?

यह तो अच्छा हुआ कि बात उस समय कल्याणी असरानीसे अलग हट आई थी । नहीं तो उस विषयमें मेरे मनको भी समाधान न था । मैं न जानता था कि उस बारेमें सोचूँ तो क्या, और न सोचूँ तो क्या ? पर पत्नी पूरी हैं, वह किसी अधूरेपनको मनमें टिकाना पसंद नहीं करतीं । सो समय

पाकर उन्होंने पूछा—क्यों जी, उन्हें दुःख काहेका हो सकता है ?

मैंने कहा—फिर वही बात ! कह तो दिया कि मैं अंतर्दामी नहीं हूँ ।

“ तुम उनसे एक दिन पूँछते क्यों नहीं हो ? ”

मैंने कहा—जाने कैसी बात तुम कहती हो । अरे तो भाई, तुम्हारे क्यों नहीं पूछा ?

बोलीं—मेरा तो उनके सामने इतना मुँह नहीं खुलता ।

मैंने कहा—तो हुआ, बस ।

बोलीं—सुना है, उनके डाक्टर साहब उनका बहुत मान करते हैं । अपनेको उनके आगे कुछ नहीं गिनते ।

“ सो तो है ही । ”

“ सुना है, सब धन असलमें उन्हींका है । डाक्टरका कुछ भी नहीं है । सब उन्हें विवाहमें मिला है । ”

“ किससे सुना ? ”

“ यही औरतोंसे सुना, और किससे ? क्या गुलत है ! ”

मैंने कहा—होगा । हमें क्या ?

पत्नी चुप हो गई । जैसे विकल्पमें हों । अनंतर धीमे स्वरमें बोलीं—एक बात है । उनका चरित्र अच्छा नहीं सुनती हूँ ।

मैंने चौककर कहा—क्या ! चरित्र ?

बोलीं—बहुत ऐसी-वैसी बातें सुननेमें आती हैं ।

मैंने तब जोरसे कहा—जिनके कान कचे हैं, उन्हें उनमें रुई लगा लेनी चाहिए । ध्यान रखनेको सबके पास अपना

चरित्र कम नहीं है। यह क्या आदत है लोगोंकी ? दूसरेमें खोट देखते हैं, अपनी चिन्ता नहीं करते। दूसरेका तिल ताड़, अपनी आँखका पहाड़ कुछ नहीं। सुना ? तुम्हें भी यह करना चाहिए। मुझे भी यह करना चाहिए। हरेकको यह करना चाहिए। कान मूँद लेने चाहिए। चरित्र, चरित्र। क्या होता है चरित्र ? सुनती हो ? अबसे किसीके चरित्रकी बात न करना।

कुछ ऐसे आवेशसे मैंने यह सब कहा कि पत्नीको बिगड़नेका भी ध्यान न रहा।

मैंने कहा—सुनो। कल तुम खुद उनके यहाँ जाना। डरना नहीं। और जो पूछना हो पूछना। मनमें शक रहनेसे अच्छा है कि कोई अशिष्ट समझा जाय, पर शक निकाल कर साफ़ कर दे। जाओगी ?

“ मैं जाऊँगी ? ”

मैंने कहा—वह मेम साहब हैं, इसीका ख्याल है ? नहीं नहीं, सो कुछ नहीं।

आशय यह कि मैं चाहता था और अगले दिन पत्नी उनके यहाँ गई।

११

वह लौटीं तो बहुत बातोंसे भरी थीं। आकर बोलीं—
तुमने क्यों नहीं बताया कि वह ऐसी हैं ? कौन कहता है वह मेम साहब हैं ?

पत्नी उनके प्रति मनको सराहना और सहानुभूतिसे भिगो कर लाई मालूम होती थीं। कहने लगीं—वह ऐसे मिलीं जैसे कबकी बिछुड़ी कोई स्नेहिन मिली हो। तनिक भी पराया-पन नहीं मालूम होने दिया। कहने लगीं कि धन्यभाग्य, नहीं तो कौन हमारे यहाँ पाँव रखने भी आता है। हम क्रिस्तान जो समझे जाते हैं !

पत्नीने जो कहा मैं सब सुनता रहा। संक्षेपमें उसका यही भाव था कि उनमें गुमान ज्यादा नहीं है और वह बड़ी भली हैं। और कि पति उन्हें बहुत प्रेम करते हैं, बहुत आदर करते हैं। पर कहती थीं कि मैं ही उनके लायक नहीं हूँ।

मैंने पूछा—उस लायक नहीं होनेका मतलब भी तुमने उनसे पूछा ?

उन्होंने कहा—वह हँसकर कहने लगीं कि शास्त्रोंमें जैसी सती शीलवन्ती भार्या लिखी है, मैं वैसी कहाँ हूँ ? अँग्रेजी पढ़ी हूँ, डाक्टर हूँ, मोटर चला सकती हूँ। क्या ऐसी नारी शीलवन्ती हो सकती है ?

मैंने पत्नीसे कहा—तो उनकी बात ठीक है। क्यों ?

पत्नी बोलीं—मुझे तो विश्वास हो नहीं सकता। कोई दुश्चरित्र भला अपनेको वैसा बताता है ?

मैंने कहा—तो ?

बोलीं—आगे मैंने पूछा तो उन्होंने हँसकर इधर उधरकी बातोंमें टाल दिया। कहा कि 'मेरे मनके भीतरका अँधेरा बाहर

आयगा तो वह तुमको अच्छा नहीं लगेगा। उसे कुरेदनेमें क्या है ? उसे मुँदा ही रहने दो। यह कुछ इस तरह कहा गया कि मुझसे फिर आग्रह करते नहीं बना। मैं समझती हूँ कि कुछ बात है ज़रूर।'

मैंने कहा—छोड़ो छोड़ो। होगा कुछ। अपनेको क्या ?

उस विषयमें पत्नीके वर्णनमें मुझे दो सूचनाएँ दिलचस्पीकी लगीं। एक तो उनका मंदिर। दूसरे अँग्रेजियतके बारेमें उनकी कड़ी आलोचना।

मंदिरके बारेमें बताया गया कि एक बड़ा-सा कमरा है। उसका नाम जगन्नाथधाम रक्खा है। घरकी सब कीमती चीजें वहाँ हैं। केशबक्स और ज़ेवरका बक्स वहीं रक्खा जाता है। उस कमरेका ताला नहीं लगाया जाता। पश्चिमकी दीवारके सहारे पत्थरकी बेदीपर सब धर्म-सम्प्रदायोंकी छोटी छोटी मूर्तियाँ रक्खी हैं। जिनकी मूर्ति नहीं उनके चित्र। ईसा और बुद्धकी खड़ी प्रतिमाओंके बीच काब्रे शरीफ़की तस्वीर है। एक घीका दीपक चौबीसों घंटे बेदीके बराबर जगा रहता है। सामने एक थाली है जिसमें कुछ मिट्टी, दूध, फूल, वनस्पतिके अंश, अन्नके दाने, जल, एक सोनेकी मोहर और आदमीके सिरका एक सूक्ष्म अस्थि-खंड रक्खा रहता है। एक तरफ़ सब धर्मोंकी किताबें चुनी हैं। ऊपर दीवारपर एक बहुत बड़ा मानव-कंकालका चित्र है। कमरेमें जगह जगह हर अवस्थाकी उनकी अपनी तस्वीरें लगीं हैं। बचपनकी, कैशोरकी, युवावस्थाकी और हालकी। सबके ऊपर उनकी माताकी मृत

अवस्थाका चित्र है जब वह अर्थीपर ले जाई जानेको हैं । और हरेकके नीचे एक अस्थिशेष नर-कंकालका चित्र टँका है । कमरेके फर्शपर कीमती ईरानी कालीन बिछे हैं । मूर्तियोंके समक्ष दो संगमरमरकी चौकियाँ हैं । एकपर कुशासन बिछा है । दूसरी, जो ज़रा ऊँची है, बराबरमें अनबिछी रहती है । नीचीपर आरतीके समय खुद बैठती हैं । ऊँची पतिके लिए है ।

सायं-प्रातः जगन्नाथजीकी आरती होती है । आरती वह खुद करती है जिसमें अपनी बनाई कविता पढ़ती हैं । घरके नौकर-चाकर, बाल-बच्चे और पति, सब शामिल होते हैं । जिस दिन पति बेकाम अनुपस्थित होते हैं, उस दिन खाना छोड़कर पत्नी प्रायश्चित्त करती है । मंदिरके कमरेमें भेद-भाव नहीं रक्खा जाता । मेहतरानीको कई बार साग्रह शामकी आरतीमें शामिल किया गया और उसे उसी थालीमेंसे प्रसाद मिला है । नीचे रहनेवाली एक मुसल्मान साईसकी पत्नी तो अक्सर शामको आरतीमें साथ होती है । अमीर-गरीबका भेद तो है ही नहीं ।

मैंने श्रीमतीसे पूछा—यह सब तुम्हें कैसा लगा ?

बोलीं—क्या बताऊँ, मेरी तो कुछ समझमें नहीं आया ।

मैंने कहा—जुनून है । है कि नहीं ?

बोलीं—मुझे तो यह अच्छे लक्षण नहीं मालूम होते ।

“ क्या मालूम होता है ? ”

पत्नीने क्षुब्ध भावसे कहा—क्या जानूँ, क्या होता है । लेकिन कहती हूँ कि ये लक्षण भले नहीं हैं ।

मैंने हँसकर कहा—तुमने वहाँ उनको समझाया नहीं ?

बोलीं—उस वक्त तो मुझे कुछ ग़लत नहीं लग रहा था, बल्कि मुझे ही उनकी श्रद्धा छूती थी। उन्हें अपने जगन्नाथकी बड़ी लगन है। अपने मकानके कमरोंके नाम भी सब उन्होंने उसी ढँगके रख लिए हैं। बताया कि यह जगन्नाथजीका बैठक-खाना है, वह अन्नपूर्णाजीका भंडार है, इत्यादि। मैंने उनसे पूछा था कि फिर तुम्हारा क्या है, सब कुछ तो जगन्नाथजी और अन्नपूर्णाजीका हो गया ? उस समय उन्होंने खूब गंभीर होकर कूड़ाघरको दिखाते हुए कहा कि यह मेरी जगह है। जब मैं जगन्नाथजीको भूँँ तो बस यहीं पटकने लायक मुझे समझा जाय। मैं उस वक्त उनके मुँहसे इस बातको सुनकर हँस बिल्कुल नहीं सकी थी, कुछ ऐसी सौम्यता उनके चेहरेपर थी। इसीसे कहे देती हूँ कि लक्षण भले नहीं हैं।

मुझे विलक्षण मालूम हो रहा था। मैंने अनायास पूछा—और क्या ?

पत्नीने बताया—जबसे मन्दिर हुआ है, उनकी आमदनी तबसे बराबर बढ़ती जा रही है। अब उन्हें अपने सुख-दुःखकी परवा बिल्कुल नहीं रहती। कहती हैं कि स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहने लगा है। सबरे चार बजे उठ जाती हैं और आरती-पूजाका वक्त निकालकर बाकी दिन काममें लगी रहती हैं। किसी रोगी और किसी भिखारीको वापिस नहीं करतीं। खुद तो कभी फ़ीसकी बात करती ही नहीं; लेकिन अगर उन्हें मालूम हो जाता है कि डाक्टर साहबने या किसी

असिस्टेंटने फ़ीसके बारेमें आप्रह रक्खा है और कोई रोगी निराश लौट गया है तो वह दो दो रोज़के लिए खाना छोड़ बैठती हैं। कहती हैं कि मेरा जगन्नाथ तो सब कहीं है। घट-घटमें वही है। तब किसीको घरसे निराश लौटाकर मैं दाना मुँहमें डालूँ, तो मेरा जगन्नाथ मुझे क्या कहेगा? क्या वह नारायण तब कहेगा नहीं कि क्यों री, ऐसी ही तेरे यहाँ मेरी पूजा होती है? नरके अनादरमें कहीं नारायणकी पूजा है?

सब कहकर अन्तमें पत्नीने कहा—मैं तुमको सुनाए देती हूँ, इन लज़्जों वह अधिक दिन नहीं चल सकतीं।

मैंने टालनेके लिए कहा—क्यों? इधर वह कोई दुबली हुई तो नहीं दीखती। और तुम जैसी भविष्य-वक्ता हो सो मैं जानता ही हूँ।

उन्होंने प्रकृत भावसे कहा कि ऐसी बातोंमें तुम क्या जानो। तुम कुछ नहीं जानते। इसमें अँग्रेज़ी जाननेसे कुछ नहीं होता है।

मन्दिरके अलावा दूसरी उल्लेखनीय बात अँग्रेज़ी और अँग्रेज़ियतके प्रति उनकी कटु-तीक्ष्ण भावना थी। वह अधिक-तर आधुनिक और भद्र समाजमें मिलती जुलती थीं। बोलनेके अतिरिक्त अँग्रेज़ी बहुत अच्छी लिखती भी थीं और धिलायती रीति-नीतिके निर्वाहको ऊपरसे तनिक छोड़ती नहीं मालूम होती थीं। पहनावे आदिमें लाञ्छनातीत आधुनिक थीं। तिस-पर उस सभ्यताकी ऐसी भर्त्सना कुछ समझमें आनेकी बात नहीं थी। अँग्रेज़ोंको तो वह सराह भी सकती थीं। लेकिन हिन्दुस्तानी जो अँग्रेज़ी अपनानेमें हिन्दुस्तानी ही नहीं

रह जाते थे, उनके प्रति वह बिल्कुल अनुदार थी। खुदको वह उसी श्रेणीमें गिनती थीं। इस कारण वह अपनेसे कुछ अधिक ही रुष्ट हों तो कौन जानता है। पर उन्हें इस विलायती संस्कृतिका बिल्कुल भरोसा नहीं था। कहती थीं कि यह संस्कृति या तो आदमी-आदमीके बीचमें स्वार्थका सम्बन्ध बना कर हथियारकी ज़रूरत पैदा कर देगी, नहीं तो उनके दर्मियान एक खाई बनी रहने देगी। इस संस्कृतिमें हृदय नहीं है, हिसाब है। यह संस्कृति ही नहीं है। यह तो बढ़ाबढ़ीका जूआ है। एक घुड़दौड़ है। संस्कृति उसे कौन कहता है? जो चमक है वह ज्वरावेशकी है, स्वास्थ्यकी नहीं है। सन्तोष वहाँ नहीं है। भागाभागी है, भागाभागी। इसमें भी शक है कि उस भागमें गति है। वह भागना चक्रमें भागना है। उसकी जड़में अनीश्वरता है। आत्माको नहीं जानकर जानें वे क्या जानते हैं। ये लोग ईमान न होनेमें ईमान रख सकते हैं। इस सम्बन्धतामें स्त्रियाँ अपनेको चाहती हैं, मर्द अपनेको चाहते हैं, और दोनों अपने लिए दोनोंको इस्तेमाल करना चाहते हैं। दोनों इस तरह एक दूसरेको छलनेमें अपनी कामयाबी गिनते हैं। इससे मनुष्यताको तरक्की मिलेगी? खाक मिलेगी। इससे ध्वंस पास आयगा। यह तो छीन-झूट और ख़ाँव-ख़ाँव है। इसमें उन्नति कहाँ रखी है। मौत, हाँ, वहाँ ज़रूर बैठी है।

इस सम्बन्धमें उनकी आलोचक-भावना तत्त्वसे आगे होकर व्यक्ति तक भी पहुँच जाती थी। और यद्यपि आभिजात्यके शील और संस्कारके कारण कोई अभद्रता ऊपर तलपर

आकर प्रकट नहीं होती थी, पर उस झुकावके नर-नारियोंके लिए उनके मनमें समुचित आदरभाव नहीं रह पाता था ।

उनकी इस वृत्तिके समर्थनके लिए, या उसे समझनेके लिए, मुझे कोई कारण नहीं हाथ आता था । क्यों उनमें यह आक्रोश है ? क्यों उत्कटता है ? अभाव जब उनके पास नहीं है तो फिर किस कारण यह तिक्तता उनके मनमें जम कर रह रही है ? पत्नीसे पूछकर मैंने बहुतेरा पा लेना चाहा कि क्या बात हो सकती है जो उनके इस दुचित्तेपनका कारण हो ? लेकिन कुछ मेरी समझमें नहीं आया ।

मैंने पत्नीसे हँसीमें कहा—तुमने फिर उनसे क्यों नहीं कह डाला कि देर किस बातकी है ? क्यों वह उस लीकको एकदम नहीं छोड़ देती ? क्यों नहीं आगे आकर सादगीको अपना लेती ? छोड़ें व्यर्थता और विशिष्टता । साधारण होकर रहें । बढ़-चढ़कर तो खुद रहती हैं !

पत्नीने मेरी ओर देखकर कहा—सब तुम्हारी मानकर कंगाल हो जायँ तो बस बस चुकी दुनिया । फिर भी मालूम होता है कि वह अपनी खुशी उस जगह नहीं हैं जहाँ कि हैं ।

मैंने बातको ज़्यादा नहीं कुरेदा । क्यों कि आखिर उससे क्या हासिल था ।

१२

मैं जान-बूझकर ही फिर उधर नहीं गया । जाकर क्या बनाता ? इतनेमें एक रोज़ डाकसे मुझे एक पत्र मिला जिसके

साथ दो लेख थे । लिखा था कि मैं उन लेखोंको देख लूँ और उनसे मिलनेको आ सकूँ तो बड़ी कृपा हो ।

लेखोंको पढ़कर मुझे विस्मय हुआ । उनमें भाषापर अच्छा अधिकार था । पर वह तो कोई विशेष अचरजकी बात न थी । अजब मुझे यह लगा कि उनमें स्त्री-स्वातंत्र्यके विचारकी खूब खबर ली गई थी और विवाह-संस्थाका बेहद समर्थन था । कहा गया था कि स्त्री-स्वातंत्र्य और कुछ नहीं, मातृत्वसे बचनेकी चाह है । लेकिन स्त्री भूलती है अगर वह अपने प्रेयसी-रूपपर मुग्ध है । वह रूप छलना है । वह अनित्य है । क्षणिक है । और अगर उसमें मातृत्वका फल नहीं है तो वह निष्फल है, अनर्थकर है । स्त्रीकी सार्थकता मातृत्व है । मातृत्व दायित्व है । वह स्वातंत्र्य नहीं है । स्त्री निपट स्वच्छंद रहना चाहती है, तो उसके मूलमें यही अभिलाषा है कि माता बननेसे वह बची रहे और पुरुषके प्रति उसका प्रेयसीका रूप ही प्रतिष्ठित बना रहे । लेकिन इससे बड़ी प्रवंचना कोई नहीं है । पीछे इसमें पड़तावा ही हाथ रहनेवाला है । इस तरह अंतमें केवल एक व्यर्थताके भावको लेकर मरना नसीब रह जायगा । पश्चिम उसी प्रवंचनाके पीछे है ।

पत्नीत्वको दासता कहते हो ? हाँ, है वह दासता । लेकिन साधना भी वह है । स्वेच्छापूर्वक अगर कष्ट न उठाया जाय, तो त्राणका कोई उपाय नहीं है । विश्वके मूलमें यज्ञ है । त्यागपर भोग टिका है । सुखकी चाहना यहाँ नहीं हो सकती । सबको सुख नहीं मिल सकता । विशिष्ट वे हैं जो अपने सुखोंका

विसर्जन करेंगे, कि औरोंको सुख मिले। स्त्रीको निसर्गसे विसर्जनकी पात्रता मिली है। वह सीधा सुख चाहकर अपने विसर्जनके अधिकारसे वंचित होती है। वैसे वह अपने अधिकृत सुखसे भी वंचित होती है। और सुख उसके लिए अनधिकृत है। उसकी पुकार मचानेसे और कुछ न होगा, कोलाहल बढ़ेगा, दुःख बढ़ेगा। स्त्रीको सीखना होगा वही सनातन सतीत्व। वही उसकी चरम और एकांत साधना, वही उसका धर्म। उसका अलग स्वत्व कुछ न रहे, सब पतिमें खो जाय। स्मरण रहे कि पति व्यक्ति नहीं है, वह प्रतीक है। इससे सतीको यह सोचनेका अधिकार नहीं है कि पति सदोष हो सकता है। अपंग हो, विकलांग हो, जैसा हो, पति पति है। पति देवता है। स्मरण रहे कि वह देवता अपने आपमें नहीं, सतीत्वकी महिमाके प्रभावमें ही वह देवता है। इस लिए व्यक्ति रूपमें सदेह बनकर पतिके स्थानमें चाहे जो हो, कैसा ही वह अपूर्ण हो, सती उसको भी देवता बना सकती है। उस क्षमताका द्वार जिसके लिए बंद है वह नारी बन्ध्या भली। हिन्दू शास्त्र सच कहते हैं। स्त्रियाँ यह कहकर कि वे शास्त्र पुरुषोंके बनाए हुए हैं अपनेको स्वधर्म-पालनसे नहीं बचा सकतीं। क्या वे स्त्रीत्वकी विडंबना चाहती हैं ?—

ऐसी भावनाएँ उन लेखोंमें भरी थीं। शब्दोंसे दृढ़ता और आस्था प्रकट होती थी। तरह तरहके तर्कोंद्वारा उन्हीं विश्वासोंकी वहाँ पुष्टि थी। कहा गया था कि तापसी लोग और समाजवादी लोग एकसे भ्रान्त हैं। एकाकी ब्रह्मचर्य वैसा ही

मिथ्या है जैसे वनस्पति-हीन पृथ्वी । जो धरतीमें हरियाली नहीं चाहता, वह क्या फिर उसे मटमैली ही चाहता है ? अगर कोई धरतीको मटमैली और वीरान और सपाट और बंजर देखकर खुश है तो कहना होगा कि उसकी बनावटमें खोट है, रुचिमें प्रतिक्रिया है । कुछ उसकी प्रकृतिमें विकार है । उसके भीतर वह सूख गया है जहाँसे रस फूटता है । और वे समाजवादी जो विवाह नहीं पर समाज चाहते हैं माताओंके दूधको बाज़ारमें बेचना चाहते हैं । विवाह अर्थात् गृहस्थी उजड़ कर जो समाज बनेगा वह समाज नहीं लश्कर-कैम्प होगा ।

और प्रेम ? ईश-प्रेम ही सत्य है । बाकी प्रेम माया है । उसपर घर नहीं बन सकता, जैसे रेतपर दीवार नहीं उठ सकती । प्रेम सदा बे-घर है । घर उजाड़ते उसे देखा है । घर बसाए वह भी क्या फिर प्रेम है ? घरमें घिरा कि वह उड़ा । प्रेम गगन-विहारी है । मुक्त होकर ही वह है । बाँधनेसे वह ठहरता नहीं । इससे प्रेमकी बाँधसे बचो । प्रेमके गीत भले । उसका राग मनमें बसाए रखो । पर उसके करनेमें खैर नहीं । प्रीति पालकर किसने सुख पाया है ? प्रीतिकी रीत है आरती, प्रसाद है उसका वियोग । भोग प्रेम नहीं ।—नहीं, वह प्रेम कभी नहीं । प्रीतिका भोग है त्याग । विवाह और सतीत्व, ये समाज और स्त्रीके आधार हैं । क्यों कि इनका आधार त्याग है । शेष वंचना है, झूलना है । पश्चिम क्या और पूर्व क्या, सब ओर बात एक है । समाजका सत्य वह है जो दोको एक

करता है; वह विवाह । जो दोकी दुईको अलग अलग पुष्ट करती है, ऐसी प्रेमकी स्वतंत्रता अनिष्ट है ।

इतने उत्कट प्रतिपादनके लिए मैं तैयार नहीं था । उस भाषाके पीछे मालूम होता था कि जैसे कोई निजता हो, घाव हो । लेखोंके साथ जो पत्र था, उससे घबराहट व्यक्त होती थी । उसमें आग्रहपूर्वक चाहा गया था कि निबंध मैं देख लूँ और उन्हें कृपापूर्वक अवश्य मिटूँ । अवश्य और अवश्य । किसी दिन चारके लगभग ।

लेख तो देख ही लिए, और अगले ही दिन मैं मिला । लेकिन तब कोई कामकी बात उन्होंने मुझसे नहीं की । प्रतीत हुआ जैसे उस समय वह कुछ अतिरिक्त सज्जासे सज्जित हों । कहीं जा तो नहीं रही थीं ? डाइंग रूममें बिठाकर मुझसे कहने लगीं—देखिए, आजके लिए आप चाय अस्वीकार नहीं कर सकते ।

मैंने कहा—क्यों, आज क्या बात है ?

“ आज ? चायका वक्त है और मैं कहती हूँ । ”

मैंने कहा—चाय किसी दिन भी ऐसी चीज़ नहीं है कि जिसके इंकारका छोड़ना ज़रूरी हो ।

“ तो क्या मँगवाऊँ ? दूध ? फल ? कुछ तो—”

मैंने कहा—मेरे ही लिए कष्ट है न ? कष्ट न कीजिए । आप बैठिए ।—डाक्टर साहब इस बार काफी दिन बाहर रहे ।

उन्होंने बेहराको बुलाकर कहा कि चाय न लाये । सुनकर भी वह खड़ा रहा तो झल्लाकर कहा—हाँ हाँ, सब रहने दो ।

क्या ताकते हो ? कह तो रही हूँ ।

फिर मुझसे पूछा—तो आप कुछ,—कुछ भी नहीं लेंगे ?
“ नहीं । ”

भीक और झूठाहटके स्वरमें ताकीदके साथ तब उन्होंने वेहरासे कहा—सुन नहीं लिया ? नहीं लेंगे, कुछ नहीं लेगे, कुछ भी नहीं लेंगे । बस, अब जाओ ।

वेहरा चला गया तो वह मुझे कहने लगीं—यह आदमी बेवकूफ है । उसे जानना चाहिए कि आप कुछ नहीं लिया करते । फिर वह क्यों आस रखता है ?

मैंने कहा—मेरे बदले आप उससे नाराज़ न हूजिए ।

सव्यंग वह बोलीं—नाराज़ होकर मैं किसीका कुछ बिगाड़ सकी हूँ, अभी तक ऐसा तो मुझे पता नहीं चला । फिर नाराज़ होकर क्या करूँगी ?

मैंने कहा—मैं डाक्टर साहबकी बात पूछ रहा था ।

बोलीं—डाक्टर साहब मुझसे नाराज़ हैं ।

मैंने कहा—नाराज़ तो वह हो सकते हैं । पर नाराज़ होकर भी वह आपकी चिन्ता छोड़ नहीं सकेंगे ।

वह कुर्सीपर पीछेको सिर डालकर बैठ गई । बोलीं—अच्छा, एक बात बताइए । ठीक ठीक बताइएगा ।

कहकर कुछ प्रश्न करनेकी जगह वह समाजके प्रति व्यक्तिकी जिम्मेदारीकी गुरुता बताने लगीं । सामाजिक नियमोंका उल्लंघन उदासीन होकर नहीं देखा जा सकता । मर्यादाओंकी रक्षा आवश्यक है । नहीं तो समाज बिखर जायगा । मनुष्य

और पशुमें तब भेद नहीं रहेगा । आपसी संबंधोंमें मर्यादाका निर्वाह हम जब तक करते हैं तभी तक मनुष्य और पशुमें भेद है । पशुओंमें एकसे दूसरेमें विशेषता नहीं होती; सब समान हैं । सबके अधिकार समान है । हर दूसरेको मार खानेको स्वतंत्र है । पर मनुष्यने सभ्यता बनाई है जिसके कारण आदमी और आदमीमें विशिष्टता है । सबके पदस्थ भिन्न हैं और कर्तव्य और अधिकार भी भिन्न हैं । सबका धर्म अपनी मर्यादाकी रक्षा है । मर्यादा-हीन कर्म पशुता है । सुनते हैं आप ? समाज-विधानकी मर्यादाओंका खंडन अनिष्ट है । पशुओंका इकट्ठा गोल होता है, रेवड़ या झुंड होता है । लेकिन मनुष्यने एकत्रित होकर अपना समाज बनाया । नियम हैं, इसीसे समाज समाज है । क्या नियमकी अवज्ञा की जा सकती है ?

इसी भाँति समाजकी स्थिरतामें व्यक्तिके विसर्जनकी आवश्यकतापर कहते कहते अन्तमें उन्होंने पूछा—अब बताइए, जो उस समाज-नियमको भंग करता है उसका क्या होना चाहिए ?

मैंने कहा—क्या मैं जज हूँ ? मैं तो वकील हूँ जिसका काम भरसक अभियुक्तके प्रति जजकी सहानुभूति जगाना और प्राप्त करना है ।

बोलीं—नहीं नहीं, आप बताइए । दुरचरित्रका क्या होना चाहिए ?

मैंने कहा—होना तो सबको मुक्त चाहिए । उससे इधर उधर जो समाजके लिए असह्य हो जाता है, उसकी कुछ तो

व्यवस्था समाज करता ही है। उसी व्यवस्थामें जेलखाने खड़े हैं, और दंड-विधान भी है।

बोली—नहीं, मैं पूछती हूँ कि दुराचारिणी स्त्रीको क्यों नहीं मर जाना चाहिए ?

मैने कहा—राम-दुहाई, जीनेसे आगे मरने आदिके मामलेमें हमारी वकालत नहीं चल सकती।

बोली—हँसी न कीजिए। मैं सच कहती हूँ। क्या दुश्चरित्र स्त्रीको मर जाना चाहिए ? वह जीती नहीं रह सकती ?

मैने कहा—क्या ऐसी बातें सुननेके लिए ही मुझे बुला भेजा गया था ? तब तो मैं क्षमा माँगूँ।

उन्होंने कहा—नहीं, आप जाइए नहीं। बैठिए। मुझसे डरिएगा ? पर मैं ऐसी नहीं हूँ। सुनिए, एक बात है। उसीके लिए मैने आपको बुलाया था। पर वह पीछे। लेख भेजे थे, आपने देखे ?

“हाँ, देखे तो।”

“उनमें मैने कुछ ग़लत तो नहीं कहा ? आपका मत क्या है ?”

“मेरा मत ? पर आप अपनेसे रुष्ट क्यों हैं ?”

मानों चौककर वह बोली—इससे आपका क्या आशय ? मैं वही नहीं मानती जो लिखती हूँ, क्या यह आपका खयाल है ?

“यह तो नहीं—”

उन्होंने बीचमें ही टोक कर जानना चाहा—तो फिर ?

मैंने कहा—अत्याचार कभी अच्छा नहीं होता। अपने ऊपर किया जाय, तब क्या वह अच्छा हो जाता होगा ? यह अत्याचार नहीं तो क्या है कि आप अपनेको दुश्चरित्र कहती हैं ? दुनियामें सत्-स्वरूप कौन है ? अगर कोई है तो वह वृथा जीवित है। चाहिए कि वह खत्म हो। जो अपनी सच्चरित्रतापर अभिमान करने योग्य है, सवाल उठता है कि ऐसा आदमी इस धरतीपर जिंदा रहनेके लिए बचा ही हुआ क्यों है ? जो उसे होना था, हो चुका। अब उसके धरतीका बोझ नाहक बढ़ानेसे लाभ ? ऐसे आदमीको अविलम्ब समाप्त हो जाना चाहिए। दुनियाके हम लोग उसकी समता नहीं कर सकते। सच पूछें तो मौतका अधिकार बस उसीका है। हम अपूर्ण प्राणी उसके अनधिकारी हैं।—सुना आपने ? यह धरती मुक्त पुरुषोंके रहनेके लिए नहीं बनी है। हम सदोष हैं, यही कारण है कि हम हैं। जीवनकी आवश्यकताका समर्थन भी यही है। आप क्या सोचती हैं, कि यह कह कर कि मैं निकम्मा हूँ, मुझे न होनेकी छुट्टी हो जाती है ? जी नहीं। इसीसे मैं कहता हूँ कि कोई अपने साथ भी अत्याचारी नहीं हो सकता।

बोलीं—मैं आपकी एक भी बात नहीं समझी हूँ। देख तो रहे हैं आप मुझे। यह डाइंगरूम है, ये कपड़े हैं।—कम ठाट-बाट तो नहीं है न ?—सो क्या यही मेरा अपने साथ अत्याचार है ? मेरे पास क्या कमी है ? क्या यही मेरा अपने साथ अत्याचार है ?—तब किस अत्याचारकी बात आप करते हैं ?

मैंने थिरतासे उनकी ओर देखते हुए कहा—यह तो मैं आपसे ही पूछता हूँ। आप कहिए कि जो मैंने कहा, ग़लत है।
—आप कहती हैं ?

उन्होंने मेरी निगाहको टाला नहीं, मेरी ही ओर देखती रहीं। बोलीं—हाँ, कहती हूँ। मेरे बारेमें आप ग़लत है। मैं दुखी नहीं हूँ।

मैंने हँसकर कहा—तब तो सब ख़तम है और बहुत अच्छी बात है।

“हाँ हाँ, बताइए क्या दुःख है ? डाक्टर साहबकी नाराज़ी !” कह कर वह मुस्कराई, “पर वह तो आपसी बात है। कुछ रोज़में वह मिट जायगी। फिर क्या दुःख है ?”

मैंने कहा—दुःख नहीं है, इतना ही न ? चलिए, मैंने मान लिया।

वह गंभीर होते होते हँस पड़ीं। बोलीं—आप बहस क्यों नहीं करते हैं ? क्या वकालत भी ऐसी ही करते हैं ? इतनी जल्दी जाने कैसे कोई बात आप मान जाते हैं।

मैंने कहा—नहीं तो क्या बेबात आपको कष्ट पहुँचाऊँ ? पहले तो—

“हाँ हाँ, रुकिए नहीं। कह डालिए कि पहले तो मैं हूँ ही दुखी। यही न आप कहना चाहते थे ? पर छोड़िए उस बातको। यह बताइए कि डाक्टर साहबका अगर लौटनेका इरादा नहीं हुआ तो मैं क्या करूँगी ?”

मैंने कहा—क्यों, क्या इस शंकाका कोई कारण है ?

बोलीं—कौन जानता है ।

मैंने कहा—यहाँसे दूर रहकर कुछ विशेष काम है जो वह कर सकते हैं ? अगर कोई ऐसा काम न हो तो नाराज़ी अपने ही अवलंबपर बहुत देर नहीं टिक सकेगी ।

उन्होंने तब नीची आँखें करके कहा— मुझे यह पाँचवाँ महीना लग गया है । यही ज़रा ख़याल है ।

सुनकर एकाएक मैं असमंजसमें पड़ गया । कुछ कहनेके लिए कहा—घबरानेकी बात नहीं है ।

धीमेसे बोलीं—हमारा यहाँ अपना कोई नहीं है । मैं कहाँ जाऊँगी ?

मैंने कहा—घबराइए नहीं । घबराइए नहीं ।

“ पिछले साल बड़े अस्पताल गई थी । ओः, अब वहाँ नहीं जाऊँगी । ”

मैं चुप रहा ।

मेरे चुप रहनेपर आँख उठाकर वह जोरसे बोलीं—आप बताते क्यों नहीं हैं कि मैं क्या करूँगी ?

मैंने अत्यंत आश्वासनके स्वरमें कहा कि सोच आप नाहक करती हैं । अव्वल तो डाक्टर साहब जल्दी आ जाएँगे ।

बीचमें ही बोलीं—सोच मुझे अपना नहीं है । पर बच्चा,— वह कहाँ जायगा ?

मैंने कहा—जाने आप भी कहाँकी बात करती हैं । हम सभी तो हैं, फिर आप—

उन्होंने मेरी आँखोंमें देखकर कहा—आप मेरा नहीं, बच्चेका जिम्मा तो लेते हैं ?

मैंने कहा—ईश्वर सबका मालिक है । आप सब भार उस-पर छोड़ सकती हैं ।

उनके चेहरेपर मैंने उस समय जैसे कुछ समाधानकी झलक देखी । बहुत धीमे प्रश्नासके साथ साँवनाके स्वरमें उन्होंने तब कहा—ओः, तो आप ईश्वरको मान सकते हैं ?

मैंने कहा—मैं तो सबका मालिक नहीं हूँ । फिर कोई मालिक होगा तो ईश्वरके सिवा वह क्या होगा ? मैं जानता हूँ कि चिन्ताको अगर छोड़ा जा सकता है तो मँझधारमें होकर बस उसी अतल-अनंतमें छोड़ा जा सकता है जिसे ईश्वर कहते हैं । जो स्वयं निराधार होकर सब आधारोंका आधार है । शेष सब अवलंब वृथा है ।

बोलीं—अब मुझे कुछ नहीं चाहिए । मुझे अपनी चिन्ता नहीं है । मैं अपना हाल जानती हूँ । मुझे नहीं रहना । बस बच्चा—

मैंने कहा—फिर वही । ईश्वरके बाद हम आप रहते कौन हैं ? छोड़िए छोड़िए । अपनेको कष्ट आप मत दिया कीजिए । हाँ, यह बताइए कि डाक्टर साहबका कोई पत्र आया है ?

उन्होंने धीरेसे कहा—आया है ।

“ आनेकी बाबत कुछ लिखा है ? ”

उन्होंने टालते हुए कहा—सो वैसा कुछ नहीं है ।

मैंने कहा—क्या उससे संदेह होता है कि वह नहीं आवेंगे ?

उन्होंने इस बातका कुछ भी उत्तर नहीं दिया । वह अपनी जगहसे चुपचाप उठकर गई और अंदरसे पत्र लाकर मेरे सामने बढ़ा दिया ।

मैंने उसे लेनेसे इंकार करते हुए कहा—उसकी कुछ आवश्यकता नहीं है ।

पर उन्होंने अपना हाथ मेरी ओर बढ़ाए रखकर जाने किस स्वरमें कहा—देखिए ।

मैंने फिर अनिच्छा प्रकट की । लेकिन उन्होंने अपना हाथ वापिस नहीं खींचा और कुछ उत्तर भी नहीं दिया ।

मैंने पत्र लिया, पढ़ा ।

१३

बीच-बीचमें पत्र पढ़ना मुझे कठिन हो गया । तबियत हुई, छोड़ दूँ । लेकिन कल्याणीने ऐसा न करने दिया । लाचार एक एक शब्द पढ़ा । अनकहने आक्षेप और दुर्वचन पत्नीके लिए उसमें थे । कुछ ऐसी बातें थीं कि क्या बताऊँ । मैं तो हैरतमें रह गया । लिखा था—तुम जानती हो कि तुम्हारी क्या हालत थी जब मैंने तुमसे विवाह कर तुम्हें बचाया । तुम्हारा कुलीन-विवाह असंभव था । माँ-बापको तुम गल-ग्रह थीं । मैंने ही तुम्हारा उद्धार किया । यह योरुप नहीं कि बड़ी उम्र तक तुम कुंवारी रहो और समाजमें स्थिति पा सको । आज दर दरकी तुम होतीं । यह सब अब तुम भूले जाती हो ! अपनी हैसियतका खयाल रखना । तुम्हारे कुल

तकपर तो धब्बा है। तब तुम्हारा शील क्या ? मैं वकीलोंसे सलाह ले रहा हूँ। कानून हिन्दू स्त्रीको हक नहीं देता। पैसेपर अधिकार मेरा है। तुम समझती हो, तुम कमाती हो ? लेकिन तुम आज मुँह भी उठा सकती हो तो मेरी बदौलत। अपनी डिगरी और काबिलीयतका गर्व न करना। मैं न होता तो तुम्हें जीनेको ठौर न था। खैर, अदालतकी सहायतासे ही हो, मैं अपना अधिकार प्राप्त करूँगा। पुंश्र्वली स्त्री दयाके भी योग्य नहीं है। समाज उसकी चिन्ताका दायी नहीं। न उसे कानून आश्रय देगा। तुम्हारा किया ट्रस्ट भी नाजायज़ है; क्योंकि मैं कहूँगा कि मेरे दस्त-खत फ़र्जी हैं। यह सब बन्दोबन्त करके ही मैं लौटना चाहता हूँ। तुम रह सकती हो, पर मातहत बनकर। नहीं तो नहीं। मैं जानता हूँ, तुम्हें सहायकोंका सहारा है। पर मुझे देखना है कि वे कौन हैं और क्या करते हैं। इत्यादि इत्यादि।

पत्र पढ़कर मैंने सामने गुलदस्तेके नीचे सरका कर दाब दिया। फिर उनकी ओर देखा।

पर उनके चेहरेपर कुछ नहीं मालूम हुआ। जैसे वह कहीं और हैं। मुझे उस तरह देखते देखकर उल्टे वही पूछ उठीं—आप खत पढ़कर सोचमें पड़ गए हैं क्या ?

मैंने कहा—हाँ। मुझे निश्चय नहीं है कि कानून उनका साथ नहीं देगा, या कि उनके विरोधमें आपका पक्ष लेगा।

वह सुनती रहीं। अनन्तर मुस्कराईं। बोलीं—आप उन्हें नहीं जानते हैं। शारीरिकके अलावा वह मुझे और कष्ट नहीं दे

सकते । मैं अपने ऊपर उनके प्रेमके दावेको जानती हूँ । प्रेम करते हैं, इसीसे मार तक सकते हैं । लेकिन वह झोड़िए । मेरे शरीरको उन्होंने इतनी साजसज्जामें रक्खा है,—अगर उसको वह कड़ी चोट भी दें तो उनको अधिकार है । उनके दंडसे मैं बचूँ क्यों ? क्यों कि जो पुरस्कार-सिंगार वह मुझे देते रहे हैं वह मेरी पात्रतासे बहुत था । उसको मैंने अपना प्राप्य नहीं माना । इससे जितना मुझसे छीना जाता है उतनी मुझपर कृपा की जाती है । उतना ऋण उतरता है । पर आप सच मानें, डाक्टर साहब शरीरके अतिरिक्त मेरा कुछ नहीं छूएँगे । और शरीर—रोज़ तो रोगियोंको देखती हूँ । उसकी यथार्थतापर मुझे जुगुप्सा होती है । उसकी ममता अब मुझमें बस नहीं सकती । शरीरकी ममता !—ओह, मैंने किस किस अवस्थामें उसको देखा है । इससे देहको साजसे सजाया जाय, बेतसे उधेड़ा जाय, या औजारोंसे चीरा-फाड़ा जाय, सब एक बात है । फर्क ऊपरका है । ममता नहीं, तो फिर आशंका कैसी ? इससे आप इस ख़तको मनमें न लें । डाक्टर मुझे प्रेम करते हैं, कुछ अन्यथा करेंगे तो प्रेमके कारण । और मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि भौतिक सुखसे वंचित वह मुझे अधिक काल देख नहीं सकते । सुनते हैं आप ? पर आपको जल्दी तो नहीं है—

मैंने कहा—ज़रूरत हो तो मैं बैठा ही हूँ ।

“ कृपा है । लेकिन आप मेरा विश्वास करेंगे ? ”

मैंने साश्चर्य उनकी ओर देखा ।

“मुझे डाक्टर साहबकी धमकीकी चिन्ता नहीं है । लेकिन एक बात मैं आपसे कहती हूँ कि आप मेरा अविश्वास नहीं कर सकेंगे । ”

मैं कहना चाहता था कि अकारण अविश्वास करनेकी आदत क्या मुझमें अब तक पाई गई है ? लेकिन किसी प्रकारका उत्तर उन्होंने मानों अपनी ही ओरसे मेरे लिए अनावश्यक बना दिया । वह कहती रहीं—

“ मरता तो आदमी ज़रूर है । हर कोई मरता है । लेकिन मरनेके बाद क्या होता है, बताइए तो । बताइए, बताइए न कि आप क्या मानते हैं ?....”

मैंने कहा—मैं इस विषयमें कुछ भी माननेका कष्ट नहीं उठाना चाहता ।

“..मरकर उसका जन्म तुरन्त हो जाता है या कुछ काल प्रेत-योनिमें रहना होता है ? आत्मा तो नहीं मरती न ? और मौत भी दो तरहकी होती है : स्वाभाविक मौत और अकाल मौत । कोई अपघात कर ले या कोई मार डाला जावे तो आप क्या समझते हैं कि उसकी वैसी ही गति होगी जैसी प्राकृतिक मौतवालेकी ?—बोलिए, बोलिए । ”

मैंने उठना चाहते हुए कहा—मैं ऐसी बातोंके अयोग्य हूँ ।

“ नहीं नहीं, जाइए नहीं । सच पूछती हूँ, मृत आत्माएँ क्या दीख नहीं सकती ? या वे दीख सकती हैं ? ”

मैंने कहा—यह आपको क्या हुआ है ? मुझे जाने दीजिए ।

बोलीं—सुनिए । मैं कहती हूँ कि मैं अपना अविश्वास कब

तक कर सकती हूँ ? किताबकी बात नहीं है, पढ़ी-सुनी बात नहीं है । देखी-भाली कहती हूँ । चार रोजसे बराबर वही देख रही हूँ । ठहरिए, हुलिया बताती हूँ ।

मैंने फिर कहा—आप यह कह क्या रही हैं ?

बोलीं—सुनिए । रंग गेहुँआ, चश्मा लगाते हैं, कद बड़ा, सुन्दर दीखते हैं ।

मैंने झुल्लाकर कहा—छोड़िए, छोड़िए । यह आपको हुआ क्या है ?

बोलीं—क्या आप मानते हैं कि मैं अपने होशहवासमें नहीं हूँ ? मैं उस आदमीको हजारोंमें पहचान सकती हूँ । मूँछें छोटीं, बालोंमें लहर, विलायती लिबासमें रहते हैं, उम्र कोई चालीस ।

मेरी बेताबी भाँपकर उन्होंने कहा—मैं सब कहती हूँ । सुनिए । लेकिन आप कहिएगा नहीं, किसीसे न कहिएगा । मैं किसीका अनिष्ट नहीं चाहती ।—हमारे घरके गुसलखानेमें एक युवतीकी हत्या की गई है ।

मैं इसके लिए तैयार न था । कहा—क्या ? कब ? आप दीवानी तो नहीं हो गई हैं !

“ ना दिन ठीक नहीं बता सकती । नहीं, दीवानी अभी नहीं हूँ । वह युवती मुझे घरमें कई बार मिल चुकी है । क्या वह जीती है, या मर गई है ? उसकी हत्या हुई थी । वह मुझे कुछ बताती नहीं है । उसके ओठोंसे आवाज़ नहीं निकलती । लेकिन मैंने खुद देखा कि उसे गला घोटकर मारा गया था ।

गला घोंटे जाते हुए तो खुद नहीं देखा, लेकिन मैं कह सकती हूँ कि उसकी हत्या हुई है।”

सुनते सुनते मेरे चित्तको समाधान-सा हो आया। भला ऐसी कहानियाँ हममेंसे किसने नहीं सुनी होंगी। मैंने हँसकर कहा—आप भी कैसी बातोंपर विश्वास करने चली ह !

वह हठपूर्वक बोलीं—विश्वास नहीं तो क्या अविश्वास करूँ ? अपनी आँखोंका विश्वास न करूँ तो विश्वास किस बातका करना होगा, बताइए तो ? अगर यह विश्वास कर सकती हूँ कि अब दिन है और आप सामने बैठे हैं, तो पहली बातका भी अविश्वास नहीं कर सकती।

मैंने उस विषयको टालना चाहा। लेकिन मेरा यत्न वृथा हुआ।

बोलीं—देखिए, इस बारेमें आप मुँह न खोलिएगा। जो अभी मालूम नहीं है वह आगे भी मालूम न हो। लेकिन अगर मनकी बात निकल सके तो पता भी हो सकता है कि मैं सच कहती हूँ, या क्या ? इधर रोज़ जो आँखोंसे देखती हूँ, वह झूठ है तो फिर सच नामका पदार्थ इस दुनियामें कहाँ मिलेगा ? ओह, मुझे उस आदमीपर बड़ी दया आती है। और वह नई उम्रकी युवती,— वह तो मेरी हर घड़ीकी साथिन हो गई है।

कल्याणीकी इस हालतपर मुझे विस्मय हुआ। जुनून कहकर मैं उनकी उस अवस्थाको टाल नहीं सका। जैसे कोई तकलीफ़ भीतरसे उन्हें मथ रही हो। फिर मैं टालता भी तो

क्या वह उद्वेग टल सकता था ? अनिवार्य था कि मैं सुनूँ और सुनता जाऊँ । मैंने सुना और सुनकर उस विशृंखल उद्गारका जो भाव मैं बना सका वह यह है ।—

कोई एक महीनेसे गुसलखानेसे सिसकीकी आवाज़ उन्हें सुन पड़ती थी । जैसे कोई मुँह दाबकर रोता हो । साँझका अँधेरा गाढ़ा होता कि आवाज़ शुरू हो जाती । पहले तो वह सुनती रहीं और टालती गईं । सोचा कि होगा कुछ । कहीं मनका भ्रम ही न हो । पर चीज वह टाले टल न सकी । जैसे वह आवाज़ उठती हो तो अन्दर कलेजेको पकड़ लेती हो । कई बार झपटकर वह वहाँ गईं । पर देखें तो कहीं कुछ नहीं, पहुँचनेपर सब सुनसान दीखता था । वह लौट आतीं और अपनी घबराहटपर हँसना चाहतीं । ऐसे कई दिन निकल गये । हठात् उधरसे ध्यान मोड़ना चाहा । पर रह-रहकर सिसकी भरती किसी स्त्रीकी वह आवाज़ कानोंपर आती ही थी । सुनकर जी मैं हौल चढ़ती थी । कुछ सूझता नहीं था । एक रोज़ आधी रात बीते वह सपनेसे चौंककर जगीं । सन्नाटा था । बत्ती मद्धम जल रही थी । सपने सिरमें घूम रहे थे । तभी सुनती क्या है कि जैसे गुसलखानेमें कुछ फुस फुस आवाज़ें हो रही हैं । कमरेमें वह अकेली थीं । मारे डरके वहींकी वहीं वह गड़-सी रहीं । पर कान चौकले थे और चेतना उदीप्त थी । कुछ देरमें वह आवाज़ें ज़रा प्रबल हुईं । जैसे किसी स्त्री और पुरुषमें बहस छिड़ी हो । बहस ज़रामें बखेड़ा बन आई । अब कुछ साफ़ सुनाई देने लगा—

एक पुरुष-कण्ठने कहा—चुप नहीं रहेगी, क्यों ?

स्त्री-कण्ठने उत्तर दिया—मैं नहीं रहूँगी चुप । कभी नहीं रहूँगी । मुझे मार क्यों नहीं डालते ? लेकिन चुप मैं नहीं रहूँगी । मैं—

“ नहीं रहेगी ? देख, मुझे गुस्सा मत दिला । ”

“ जो मनमें है पूरा क्यों नहीं कर डालते हो ? लो, मुझको मार डालो । पर समझ रखना, चुप मैं मरनेके बाद भी नहीं रहूँगी । ”

“ नहीं रहेगी ? ”

“ नहीं, नहीं, नहीं रहूँगी । ”

“ देख, मैं फिर कहता हूँ । ”

“ नहीं, नहीं, नहीं । हाँ, घोटों गला—”

“ नहीं ? तो ले, मत रह चुप—”

उसके बाद आवाज़ कुछ भरीई-सी निकली । छुटपटाहट सुनाई दी । और धीमे-धीमे सब शान्त !

कल्याणी तो जैसे इसपर पत्थर बन आई थीं । मति-गति उनकी खो गई थी । इतनेमें पथराई आँखोंसे देखती हैं कि एक आदमी उसी तरफ़से आकर उनके कमरेमेंसे आर-पार चला जा रहा है । उनकी घिग्घी बँध गई । डरके मारे चीख भी न सकीं । क्षणमें वह आदमी जाने कहाँ बिला गया । उन्हें पसीना छूट चला था । कुछ पल बाद होश हुआ, तब जोरसे वह चीखीं । लोग जग आये । पर तब तक सब लुप्त हो चुका था । कल्याणी आँखें फाड़े जमा हुए उन सब

नौकर-चाकरोको देखती रह गई । कुछ भी मुँहसे न बतला सकी ।

उसके बाद उनका कहना था कि कई बार वह स्त्री उन्हें दीखी है । इधर तीन रोज़से तो वह पीछा ही नहीं छोड़ती । जब उसका गला घोंटा जा रहा था और आँखें निकली पड़ रही थीं, वह उसकी मूर्ति बार बार सामने आ खड़ी होती है । गुसलखानेमें कल्याणी नहीं जाती, पर वह कमरेमें आ जाती है । मनसे वह दूर नहीं होती । छुरहरे वदनकी, अतिशय सुन्दरी, अभी जैसे सयानी उमर भी नहीं है । गर्भवती है । अब भी वह इसी घरमें रहती है और रोज़ मिलती है । कल्याणी बचती हैं, पर कहाँ बचें ? उसकी फटी आँखें, कातर मुद्रा—

सुनकर कल्याणीके प्रति मैंने संवेदना प्रकट करनी चाही । पर उपाय न दीखा । मैंने कहा—आप मनसे उस दुःस्वप्नको निकाल ही दीजिए ।

पर कल्याणीने स्वप्न होनेकी बातको तनिक भी मनपर नहीं लिया और वह उसी युवतीमें तन्मय होकर कहने लगीं—मैं उससे बात करना चाहती हूँ । पर वह मुझे जैसे देखती भी नहीं मालूम होती ।—आप एक काम करेंगे ?

इस प्रश्नपर मैं चुप प्रतीक्षामें रह गया ।

“ बता सकेंगे, क्या कुछ वर्ष पहले यहाँ कोई महाराष्ट्र परिवार रहता था ? वह स्त्री महाराष्ट्रीय थी । पर वह कौन थी ? क्या पुरुषकी पत्नी थी ? नहीं तो फिर कौन थी ?—देखती हूँ, आप इसे सच नहीं मानते । ”

मैंने निश्चित ध्वनिमें कहा—हाँ, सच नहीं मानता और आपको वहम छोड़नेकी सलाह देता हूँ। यह सब दिमाग़की खराबी है।

उन्होंने जवाबमें कुछ कहना चाहा। लेकिन मैंने टाल दिया। कह दिया—मैं यह कहनेकी तो जिम्मेदारी नहीं लेता कि जीवित मनुष्यके अलावा कहीं और कुछ है ही नहीं। लेकिन जीवित मनुष्यके पास अपना जीवन ही बहुत कुछ है। उसकी ओरसे जब वह ख़ाली होता है तभी और बातें उसे घेरती हैं। जी नहीं, मैं किसी महाराष्ट्र परिवारके अनुसंधानमें नहीं लगना चाहता।

उन्होंने गंभीरतापूर्वक कहा—आप जो समझें। आपको हक़ है कि मुझे आप झूठा मान लें।

मैंने पूछा—विभा और प्रभा कहाँ हैं। कमरेमें वे आपहीके पास सोती हैं न ?

बोलीं—नहीं। दोनों कन्वेण्टमें ही रहती हैं।

“ कमरेमें आप अकेली सोती हैं ? ”

“ हाँ ! तो ? ”

मैंने स्वरको हिदायतसे भरकर कहा—जी नहीं। अबसे खयाल रखिए, कमरा अकेला नहीं रहना चाहिए।

हँसकर बोलीं—आप मेरा दिमाग़ कमज़ोर मानते हैं। अच्छी बात है। पर शायद है कि दिमाग़की कमज़ोरी न हो सचाई हो। अतीत हमारी चेतनापर क्यों झलक नहीं सकता ? क्या वर्तमान और वास्तव ही सत्यकी परिधि है ? उनके पार सब मिथ्या है ? नहीं, कोई यह नहीं कह सकता।

मैंने सलाह दी—आप मकान बदल दीजिए ।

हँसकर कहने लगीं कि इस सलाहमें कोई विशेष मानसिक बल है, यह दावा तो शायद आप करना नहीं चाहेंगे ?

मैंने कहा—अच्छा । तो फिर कुछ दिन बाहर घूम आइए । पत्नी तीर्थ-यात्राको जाना चाहती हैं । साथमें विभूति (मेरा बड़ा लड़का) होगा । आप भी तीर्थ कर आइए, मन बहलेगा ।

बोलीं—मैं बहुत चाहती हूँ । लेकिन क्या करूँ !

मैंने कहा—क्यों, बाधा क्या है ?

बोलीं—मेरा भाग्य जो बाधा है ।

मैंने कहा—तो सुनिए । पाँच-सात रोज़ हमारे यहाँ आकर रहिए । इस बीच मैं इस मकानकी व्यवस्थाको बदल कर नया करा डालता हूँ ।

लेकिन उन्हें कुछ स्वीकार न हुआ । मैंने माथा ठोँक लिया । सोचा—तिरिया-हठ । और नहीं तो क्या ? सो मैं बुरा मन लेकर लौटा ।

१४

लौटकर मैंने तय कर लिया था कि मैं उधर नहीं जाऊँगा । क्या फ़ायदा ? उस मनोदशामें मैं क्या कर सकता था । तब सरोकार बेकार । वृथा अपनेको भी कष्ट क्यों दूँ ? जानता था कि पति-पत्नीकी अनबन है, सो कहाँ नहीं होती ? पर अनबन नित्य तत्त्व नहीं है । आज नहीं तो कल मेल हो ही जायगा । जानता था कि डाक्टर लौट आएँगे और कुछ कहा-सुनीके बाद यथापूर्व हो जायगा । सो परेशानी बेसूद ।

पर गया नहीं तो यह नहीं कि उधरकी सोचनेसे ही छुट्टी पाई। खयाल उस ओर जाता ही था। आगेका या पीछेका सब खयाल खाम-खयाली है। 'गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पंडिताः'। पर पंडित कोई हो तब न। सोच होता था कि अगर उस नारीको नियतिने कुछ सरल और समतल परिस्थिति जीवनकी दी होती तो क्या बुराई थी? यह क्या बेहतर न होता? क्या उपयोगिता अधिक न होती? क्या यह अधिक सुंदर और श्रेयस्कर न होता?

पर मनुष्य सोचता रहता है और होनहार होता रहता है। यह नहीं कि होनहारमें मनुष्यके सोच-विचारकी गिनती नहीं। सच यह है कि जो होता है, हमारे द्वारा ही होता है। फिर भी वृथा विचार कष्ट ही उपजाता है। इससे आवश्यक है कि विचार हो तो अव्यर्थ हो। भवितव्यके साथ जो मंतव्य एकरस है, वह ही है, शेष क्लेश है।

मैं प्रश्न नहीं उठाता। प्रश्नमें आग्रह है। वह अस्वीकृतिकी पद्धति है। और मैं, जो है सबको स्वीकार करना चाहता हूँ। सत्य किसीसे बहिर्गत नहीं है। न सत्यसे कुछ बहिर्गत है। भेद इतना ही है कि जितना और जो दीखने-जाननेमें आता है, सत्य उतनेमें समाप्त नहीं है। पर सत्यसे वह अन्यथा भी नहीं है। इससे माया भी सत्यकी ही माया है।

अस्वीकारद्वारा हम क्या पायेंगे? वह बुद्धिवाले ज्ञानकी पद्धति है। इंकार करो और मिटाते चलो—न इति, न इति। यही है 'प्रोसेस आफ़ एलीमिनेशन'। निसन्देह परम तत्त्वके

लिए 'नेति' से सही परिभाषा दूसरी नहीं है। पर 'नेति' में तत्त्व स्वयं कुछ नहीं है। उसमें अर्थ है तो यह अर्थ है कि मानव-भाषा अपूर्ण है। और जो ज्ञात है, ज्ञातव्य सदा उससे आगे है। इससे निस्सन्देह इन्कार गतिमें तो काम आता है, पर लब्धिमें काम नहीं आता। जो है वह न-कार नहीं है। परमात्मा इन्कार तनिक भी नहीं है। वह भविष्यकी स्वीकृति है।

तर्क सचाईको नहीं लपेट पाता है। फिर भी तर्क तर्क होनेके सबब लाचार हो वही करना चाहता है। वह वास्तविकता-को आयत्त करना चाहता है। मनसे उठ उठ कर कल्पनाएँ दौड़ती हैं और अपने तंतुओंमें लपेटकर मानों सत्यको बुन लेना चाहती हैं। पर मानवका यह भ्रान्त प्रयास है। समझना पूरा कभी हो नहीं सकता। समझमें कण भी पूरी तरह नहीं आ सकता। जो है, वह समझसे ऊपर है। सत्य अहंरूप नहीं है और जानना सब सब अहंरूप है। इससे सत्य जाना नहीं जाता। उस परमेश्वरको जो जानकर चुका देना चाहता है वह उँगलियोंसे आकाशको पकड़कर मानो पेटमें समा लेना चाहता है। पर जो यथार्थ ही है, वह बुद्धिके लिए सदा प्रश्नरूप है। अतः वह सदा अज्ञेय है। इसीसे जीवनका लक्षण चुनौती है। जहाँ चुनौती नहीं है और जो बुद्धिके हाथोंमें पालतू-सा दीखता है वह सत्य भी नहीं है। समझको चेताता हुआ, चौंकाता हुआ, जो स्वयं काल-गतिद्वारा सम्पन्न हो रहा है वही तो सत्य है। समझ कुछ उसका समझना चाहती है तो अपनेको अपनी जगह रखे। चाहिए कि वह सत्यके प्रति सदा

सप्रश्न और नतमस्तक रहे । सत्-ज्ञान सतत जिज्ञासामय है ।

सच कहूँ तो सच यह है कि विस्तृति हमसे सही नहीं जाती । अछोरमें होकर हमसे जिया नहीं जाता । परिमाणमें बँध लेते हैं तब कहीं साँसमें साँस आता है । पर इस अनन्तके बीच सीमायें हैं सब झूठ । यह तो हम ही हैं कि अपनी क्षुद्रताके क्षुद्र सत्यमें दीवारें खड़ी करके चारों ओर दिशाओंको अपनेपर बन्द करते हैं; ऊपर छुत छुकर आस्मानको मूँदते हैं; और जब इस तरह घोंसलेमें घुस बैठ जाते हैं तब अपनेको सुरक्षित मानते हैं । यह है हमारा हाल । इसके बिना हम बेहाल हैं । ऐसे हम एक साथ मकानके कैदी होकर मकानके मालिक बना करते हैं । और करें भी क्या ? कैदसे बाहर हमसे जिया कब जाय ? तब अपनापन ही हमें दूभर हो जाय । इसलिए अपनी मर्यादाको अपना स्वत्व मान कर हम मानव-प्राणी गर्व अनुभव करते और डींग मारते हैं । यही है हमारी मानवता !

हमारी धारणाएँ हमारी बन्द कुठरियाँ हैं । उनमें हमारा ठिकाना है । वे हमें गर्म रखतीं और अँधेरेमें रखती हैं । हमारा ज्ञान हमारा बंधन भी है । हमारे सारे सगुण विशेषण मानो चौखटे हैं, जिनमें हम अपनेको और औरोंको जड़कर देखनेके आदी हैं । यह पापी, वह धर्मी—झूट ऐसे विशेषणोंको आगे लाकर मानों हम उससे अपना मुँह बचा लेते हैं जो निरंतर हमारे सम्मुख है, जो इतना यथार्थ है कि शब्द उसके समक्ष निःशब्द हैं । शब्दोंमें वह समा नहीं सकता, शब्दोंकी

मूँद उसके लिए नहीं । अरे हम थोड़ी भी देरके लिए शब्दोंके घेरोंसे निकलकर निर्वाक् क्यों नहीं खुली धूप और खुली हवा ज़रा ले लिया करते । शायद अधिक तो हमसे सहा न जाय— बंदी रहनेके इतने हम आदी हैं । फिर भी धीमे धीमे सहन-शक्ति पैदा हो सकती है । अपने बंदपनपर गर्व करना छोड़ना तो हम सीख ही सकते हैं । और इस विश्वमें किसीको भी अपनेसे हीन मानना मानो अपने ही बंधनपर डींग मारना है । इससे बड़ी मूर्खता और क्या हो सकती है ? जो अपनेको और अपने मंतव्यको दूसरेसे और उसके मंतव्यसे अधिक मानता है, वह उतना ही अपनेको और अपनी मान्यताओंको मंद और सकरी बनाता है ।

पर यह मैं क्या कह रहा हूँ ? अपने हकसे शायद मैं आगे जा रहा हूँ । दुनियामें औरोंकी तरह घर-बार घेरकर मैं भी अपने तई रहा बस हूँ । विस्तारसे बचा हूँ और सुरक्षाकी चिन्तामें अपनेको बराबर जकड़कर घटाता रहा हूँ । वकालत की है, कमाई की है, कुनबा बनाया है, हवेली बनाई है । इस तरह अहंकारका पसारा पसार कर अहंघात किया है । शरीरको फुलाया और आत्माको लुंज किया है । और मैंने जीवनमें क्या किया है ? कब मैं अहंकी गंधीली गाँठको लेकर चल पड़ा हूँ कि सूरजकी धूपमें उसे खोल दूँ जिससे रोग मिटे, स्वास्थ्य मिले । पर कहाँ ? मैं तो उसी गाँठको चूसता हूँ, चूसता रहा हूँ । यहाँ तक कि उसकी बास मेरे सारे तनमें और मनमें बस गई है । इससे मैं धूप और हवाकी बात क्या करने लायक हूँ ।

पर मैं क्या कहने चला था ? हाँ, कहानी कहता था । कल्याणी नामकी महिलाकी बात थी । जी, अब वह शेष नहीं हैं, कालगत हैं । बस याद कुछ शेष है । सोचता हूँ कि अशेषकी गोदमें उस अवशेषको भी क्यों न खो दूँ, क्यों कुछ सेंट सँभालकर पास रखे रहूँ ? यहाँ बिना मरे किसको जीना है और मौतकी यादसे जीवनकी ज्योतिको घटानेसे क्या लाभ है ? पर उस यादसे छुट्टी सहज भी तो नहीं है । और वह याद चाहनेपर ज्विन-संवर्धनके काम भी कभी कभी आ जाया करती है ।

पर उसका तरीका है । शब्दोंद्वारा स्मृतिकी वेदनाको टालते नहीं रहना चाहिए । यों उसे खर्चना भूल है । शब्द अधिक-तर झूठ हैं । मनकी तकलीफ़को जब वे बढ़ावें और उस तकलीफ़से ही जब वे बनें तब तो सच हैं, अन्यथा मिथ्या हैं । भाषा बस पहरावन है और शब्द कोई भी यथार्थताको नहीं पकड़ सकता ।

शाब्दिक विशेषण मेरे काम नहीं आते । सब उथले, ओछे रह जाते हैं । आप ही बताइए, कल्याणी असरानीकी यादको मैं क्या कह दूँ ? क्या यह कह दूँ कि वह खोटी थी, या यह कहूँ कि वह अच्छी थी ? पर बुद्धिनिर्मित ये सब शब्द सतहकी लहरोंको गिनते हैं, गहराईको वे कहाँ नापते हैं ? क्या वे उसको तनिक भी पाते हैं जो अन्तर्गत है ? जो अनुभव होता है, क्या वह शब्दोंमें आता है ? रेखामें बँधता है ? पर माँग है कि उसीको लो, उसीको पाओ । किन्तु अन्तरमें ही उसे पा सकते हो, ऊपर लाकर जो देखोगे और दिखाओगे वह वह नहीं

है । आँखोंसे ओझल है, वह शब्दोंसे भी पार है । उसे बस पार ही जानो ।

सच यह है कि आदमीके भीतरकी व्यथा ही सच है । उसे सँजोते रहना चाहिए । वह व्यथा ही शक्ति है । उसमें किसीका सांझा नहीं । उसका दान गुलत है, संचय ही उसका इष्ट है । उच्छ्वासमें भी उसे व्यय करना भूल है । जितना अंश उसका आनन्द बन जाये, उसीमेंसे खर्च कर सकते हो । बाकीको तो आगके रूपमें भीतर रखे रखना ही श्रेयस्कर है । भीतर सुलग निरंतर चाहिए, बाहर झुलस ठीक नहीं ।

पर मेरी बिसात कितनी ? मैं अदना आदमी । इसीसे यह कहानी ले बैठा । कहानीका भला क्या कहना ? यहाँ करनेको कम नहीं है । करनेसे कतरा कर कहनेमें मन गँवाना मालिककी चोरी करना है । पर मेरी बिसात थोड़ी जो है । और मालिकका पूरा हक अदा कर सकनेसे मैं अपनी हार मान बैठा हूँ । इससे बेचारा बन कर कहानी ही कहता हूँ ।

पर उस कहानीमें अब विशेष शेष नहीं है । मैं नहीं जानता कि उससे तुम्हारा अनुरंजन हुआ है, या होगा । फिर भी तुम चाहते हो कि मैं अंततक चलूँ । सो अच्छा, चलो ।

उस दिनके बाद, जैसा मैंने कहा, मैंने तय किया था कि उधर न जाऊँगा, न ध्यान दूँगा । विधाताका काम है, वह देखें-भालें । बीचमें मैं आनेवाला कौन ? मनुष्यके पास अपना आपा कम नहीं है ।

पर तर्क व्यर्थ है । न कोई अपनेको एकांत बना सका है

न कभी बना सकेगा । अपनेमें सिमिट कर बना सकते हो अपनेको शून्य । लेकिन शून्यकी भी सत्ता है । सत्ताका मतलब कि उसका भी अन्यसे नाता है । इसी कारण शून्यमें भी अगणित संभावनाएँ हैं ।

इन्हीं दिनोंकी बात है कि कल्याणीके चरित्रकी एक नई संभावना मेरे सामने आई ।

१५

आये एक परिचित युवक । मैं एकाएक पहिचान नहीं सका । संभ्रम और सम्मानपूर्वक मैंने उन्हें कुर्सी देकर कहा कि कहिए—कुछ मुस्कराकर मेरी ओर देखकर वह बोले—आपने पहचाना नहीं ?

गौरसे देखा, फिर भी नहीं पहचाना । मैंने लज्जापूर्वक क्षमा माँगी ।

“ मैं पाल हूँ । सन् १९—”

“ ओह पाल ! राम राम, क्यासे क्या हो गये हो ! बिल्कुल ही अँग्रेज़ ! कहो, कहो, कहो भाई । ”

मैंने उसके हाथको खूब झुझकोरके हिलाया । पूछा कि कब आये ? कहाँ हो ? अभी रहोगे न ? खुश तो हो ? क्या हाल है ? इत्यादि ।

उसने कहा—दो-एक रोज़ हूँ । आपकी दया है । हाल अनिश्चित । सोचा, मिलता चढ़ूँ ।

मैंने कहा—यह तो बहुत ठीक किया । और सुनाओ ।

यह क्या ढंग देखता हूँ ! तुम तो घोर स्वदेशी थे । अब यह धज ! तुम्हीं बताओ मैं तुम्हें पहचानता तो किस बेशर्मीसे पहचानता ?

पाल हँस दिया—हाँ-आँ-आँ ।

मैंने कहा—बहुत सकुचो मत । तुमसे इतना बड़ा नहीं हूँ कि—। और ‘प्राप्तेतु षोडशे वर्षे’....। तुमतो जानते हो । और अब यह नियम भी पुराना हुआ कि बुजुर्गको बुजुर्ग समझा जाय । हाँ हाँ, याद आया । तुम तो शायद आजकल जरूरी आदमी हो ।

पालने धीमेसे कहा—आप तो जानते ही होंगे—

मैंने कहा—क्या, कहाँ, मैं क्या जानता हूँ ? लिहाज़ छोड़ो । कह चलो । हाँ हाँ, कह डालो ।

पालने कुछ हँसकर धीमेसे कहा—आप जानते तो होंगे ही कि मैं इस वक्त फरार हूँ ।

मैंने अविश्वासके स्वरमें कहा—क्या, फरार ? क्या मतलब ?

उसने कहा—मेरे नाम वारंट है । मैं एक्सकौड कर रहा हूँ । आप नहीं जानते ?

मुझे ध्यान नहीं था । वैसी बातोंकी खोज-बीन रखनेका मेरा संस्कार नहीं है । मैं कह उठा—क्यों ?

पालने हँसकर कहा—उस षड्यंत्र केसकी बाबत आपने पढ़ा ही होगा ।

अब मुझे सब याद आया । तो पाल महाशय इस काममें हैं और अगुआ हैं । यह लो, भला मैं यह सोच भी सकता था !

उन दिनोंका सीधा-सा ब्रजपाल और क्रान्तिलाल !—Red revolutionary ? वाह, यह भी अजब तुक हुई ! लेकिन नियतिकी लीलाको कोई नहीं जान सकता और आदमीकी लीलाको भी कोई नहीं जान सकता । कहते हैं, सबमें सब गुन हैं । बात ठीक मातूम होती है, पिंडमें ब्रह्मांड है ।

मैंने कहा—कोई बात नहीं । भला किया कि तुम मिलने आये । हो तो यहाँ ठीक ? मेरे लायक कुछ हो तो बताना ।

उसने कहा—हाँ, ठीक हूँ । क्या वक्तपर आपके आश्रयका विश्वास कर सकता हूँ ?

मैंने कहा—सो तो ज़रूर कर सकते हो । कानून मेरा खुदा नहीं है । लेकिन तुम लोग सामनेसे बढ़कर उसका मुँह क्यों नहीं पकड़ लेते हो ? पीछेसे वार करते हो, भला, इससे क्या होगा ? तभी तो है कि जब कानूनकी तरफ़से वार आता है तो तुम्हें पीठ दिखानी होती है । हम तो यही समझते हैं भाई, कि छातीपर वार देना और वार लेना चाहिए । क्यों ?

पाल खुशीसे मुझसे बहस करनेको तयार हो गया । पर जवानोंकी बहससे मैं हारता हूँ । बात पीछे छूट जाती है, क्योंकि जवानी आगे आ जाती है । तब कीजिए क्या कीजिएगा । जोरसे बोलिए या तेज़ीसे हवामें मुझे चलाइए ।—यह काम आप बढ़-चढ़कर नहीं कर सकते तो बहसमें हारिए । इससे मैंने पहले ही हार मानी । कहा—सुनो पाल, बहस मैं न कर सकूँगा । लेकिन मेरा ख़याल है कि कानूनको

सुधारना-तोड़ना है या उसके तख्तेको उलटना-पलटना है, तो सब यह सामनेसे होगा, पीछेसे नहीं होगा। इससे बेहतर मैं यह समझता हूँ कि कानूनसे बचो नहीं, और न उसको अपनेसे बचने दो। चलने दो खुली लड़ाई। शहीद कहीं पराजित है ? लड़ाईका खात्मा आज तो नहीं है न ? इससे हारमें भी हार नहीं है।

पालके ऊपर किन्तु बहुत उत्तरदायित्व था। उसकी जानकी बात नहीं थी। क्रान्तिकारी जानकी बात सोचते नहीं। पर उसने कहा—बाहर आन्दोलनको देखना-भालना भी है। उसका खयाल था कि क्रान्तिकारी आन्दोलन राष्ट्रीय जागरणमें कभी अनावश्यक नहीं है। वह राष्ट्रजागरणकी पहली स्टेज हो सो नहीं। उसकी सतत आवश्यकता है। असलमें वह युद्धका अग्रिम मोर्चा है। हम लोग फ़ारवर्ड्स हैं।

मैंने कहा—जो हो, तुमको यहाँ कुछ कष्ट तो नहीं है ?

उसने कहा—मैं सर्वथा सुरक्षित हूँ और एक बहुत विश्वसनीय जगह हूँ। वहाँ कोई कष्ट नहीं है।

मैंने यह जान कर सन्तोष प्रकट किया। कहा—मैं तुम्हारे मार्गके अनुकूल नहीं हूँ, इसपर मत जाना। तुम जानते हो कि मैं तुम्हारा बुरा नहीं चाह सकता।

उसने कहा—आश्वासन अनावश्यक है। मैं आपका अविश्वास करता तो आता क्यों। पर क्या आप मिसेज असरानीको जानते हैं ?

“ मिसेज असरानी ! क्यों, जानता तो हूँ । ”

“ आप क्या खयाल करते हैं ? ”

“ क्या मतलब ? ”

पालने बात साफ नहीं कही । यही पूछा—उनके बारेमें आप क्या जानते हैं ?

मैंने कहा—अभिप्राय जानूँ तभी शायद कुछ कामका उत्तर देने लायक मैं हो सकता हूँ ।

पालने कहा—सो कोई खास बात नहीं है ?

मैंने पूछा—क्या वह तुम्हारे दलमें हैं ।

वह हँस पड़ा । कहा—नहीं ।

मैंने कहा—सुनो, वह तुम्हारे कामकी नहीं है ।

पालने संयत भावसे कहा—यह आप क्यों कहते हैं ?

मैंने कहा—स्त्री जो हैं ।

पाल बोला—आप स्त्रीको इतना हीन समझते हैं ?

मैंने हँसकर कहा—मैं क्रांतिको उतना उच्च नहीं समझता ।

और मिसेज़ असरानी कवियित्री हैं ।

पालने मुझे सूचना दी कि जहाँ तक उनके दलको पता मिला है मिसेज़ असरानी स्वतंत्र और उन्नत विचारोंकी महिला हैं ।

मैंने कहा—सो तो हो सकता है । पर तुम्हारा आशय क्या है ?

पालने मुझे विशेष नहीं बताया ।

मैंने पूछा—तुम्हारा उनसे परिचय है ?

पाल उस बातको टालता रहा । पर स्पष्ट था कि परिचय

है। वह परिचय किस भौतिका है, उसके भीतर मैंने नहीं जाना चाहा। ऐसा औत्सुक्य अनुचित है। कल्याणी अपना भला-बुरा सोच सकती हैं। और पर-धर्म मुझे अपने ऊपर नहीं ओढ़ना चाहिए।

किंतु मुझे आभास मिला कि पालके लिए वह विषय मुझसे भी निकट है। उसने आश्चर्य विश्वाससे कहा—खियाँ क्रांतिकारी काममें हैं और हो सकती हैं। उनमें पुरुषसे कम वीरता नहीं होती। मिसेज़ असरानीका चरित्र उदार है और भावनाएँ संकीर्ण नहीं हैं।

मैंने उस विषयको समाप्त करना चाहा। कहा—मुझे वीरतासे इंकार नहीं है। लेकिन धीरताको मैं उससे अधिक मानना चाहता हूँ। फिर मैं वृद्ध इन बातोंमें क्या जानूँ ?

पाल, मालूम हुआ कि, इस फ़रारी हालमें भी दलके लिए धन-संग्रहके कामसे घूम रहा था। देशके अर्थ मरने या जेलकी मुसीबतें उठानेवालोंके परिवारके लोगोंकी देशवासियोंको काफ़ी चिन्ता नहीं है। उनकी क्या दुर्दशा है, किसीको पता भी है ? उन्हींके लिए धन चाहिए। उसने पूछा—उस विषयमें क्या आप कुछ सहायता कर सकेंगे ?

मैंने पूछा—तुम्हें इस काममें यहाँ कुछ सफलता मिल रही है ?
उसने बताया—विशेष नहीं।

मैंने कहा—मुझे मालूम होता है कि दानके रूपमें कुछ देना लेनेवालेको अपमानित करना है। तिसपर लक्ष्मीसे मेरी मैत्री भी नहीं है।

पाल कुछ निराश दीखा । मिसेज़ असरानीके प्रति उसकी सप्रश्नता मुझे समझ न आई । जैसे उस विषयमें वह आश्चस्त होकर भी शंकित हो । मैंने बात बातमें पूछा—अभी तो कुछ रोज़ हो न । कहाँ टिके हो ?

बोला—कुछ निश्चय नहीं है । एक हितैषीके यहाँ टिक गया हूँ ।

मैंने कहा—सावधान तो तुम हो ही । पर तुम्हारे हितैषीको धन्यवाद देता हूँ । तुमपर तो कई हजार इनाम है न ?

“ हाँ । सोचा है कि ये कई हजार सरकारसे क्यों न पा लिये जायँ । शहीदोंके परिवारोंके काम आयेंगे । ”

मैंने कहा—क्या तुमने आत्मसमर्पणकी बात सोची है ?

“ लेकिन अभी नहीं । एक दौरा तो देशका लगा ही लेना है । फिर देखूंगा । ”

मैंने कहा—देखना भाई, अगर समर्पण करो तो पैसेके लिए मत करना । बेपैसा कर देना । जानकी पैसेके मोल कोई कीमत नहीं हो सकती ।

पालने हँसकर कहा—आप लोग पैसेके अभावको नहीं जानते । हम जानते हैं ।

कुछ अनंतर पाल चला गया और मैं इन जवानोंके लिए एक प्रशंसा और तकलीफ़का भाव मनमें लेकर रह गया ।

इसके दूसरे या तीसरे रोज़ पढ़ा कि पाल गिरफ़्तार होनेसे बाल बाल बच निकला है, और इस सिलसिलेमें कल्याणीके मकानकी कई घंटे तक तलाशी ली गई है । सब हाल

अखबारमें देखा। इधर वह यूसुफ़ नामसे घूमता है। अनुमान था कि यूसुफ़ मिसेज़ असरानीके यहाँ ही एक हफ़्तेतक टिका रहा था। वह एक भयंकर दलका नेता है और खूनी आदमी है। पुलिसके एक भेदियेने पहचान कर उसके डेरेका पता लगाया। रातअँधेरे ही पुलिसने छापा मारा, पर कहा जाता है कि ऐन वक्तपर वह लापता हो गया। पता नहीं, कब कैसे वह ग़ायब हुआ। तलाशीमें कोई सन्देहजनक चीज़ नहीं मिली। मिसेज़ असरानीको कुछ देर हिरासतमें रखकर छोड़ दिया गया।

इस सारी सूचनामें मुझे कोई संगति नहीं मालूम हुई। समूची एक अनघट घटना जान पड़ी। मैंने जाकर मालूम करना चाहा कि बात क्या है। पहुँचा, तब कल्याणी आवेशमें थीं। बोलीं—सचमुच देशके लिए अब चुप नहीं रहा जा सकता।

मैंने कहा—बात क्या है। सीधे कहिए कि क्या आपका उस दलसे संबंध है ?

बोलीं—अब मुझे मालूम होता है कि भूल थी जो मैंने उधर ध्यान नहीं दिया।

“सम्बन्ध नहीं है ?”

“अब सोचती हूँ कि क्यों सम्बन्ध मैंने नहीं बनाया। जिस राजमें एक आदमीकी ज़िन्दगी अपनी नहीं हो सकती वह क्या राज है। मैंने पुलिसवालोंसे कहा—मेरा किसी क्रांतिके कामसे संबंध नहीं है। मैं सच कहती हूँ। तुमने तलाशी

लेकर देख तो लिया है। लेकिन फिर भी मुझे हिरासतमें लिया गया, सो क्यों? मैं जब कह रही हूँ कि मेरी उधर प्रवृत्ति नहीं रही तो उन्हें मुझे रोकनेका क्या मजाज़ था, बताइए तो?”

वह विचलित मालूम होती थीं। जैसे प्रक्षुब्ध जल। मैंने कहा—आपका उस कामसे सम्बन्ध नहीं है न और आप पालको नहीं जानती?

“उस कामसे बेशक मेरा वास्ता नहीं रहा। पर पालको जानती हूँ। यह सच है कि इन दिनों वह मेरे यहाँ ही था। एक बड़ी विपदा में था तब मुझे उसका परिचय मिला। उसने आकर मेरे यहाँ ठहरना चाहा तो क्या मैं इंकार कर देती? उसके पुण्यका फल मुझे अगर नहीं मिलेगा तो उसके पापका फल भी मेरा नहीं है। इस तरह मैं क्यों सोचूँ कि ये लड़के क्या करते हैं। फिर भी ये लोग सीधे पापी नहीं हैं। उसने मुझे दीदी बनाकर माना है, तब मैं क्या कहूँ? स्नेहके बंधनको तोड़ दूँ? मैं उनकी क्रांति नहीं जानती, पर वे लड़के तो मेरे ही हैं। उनकी दीदी बनकर मैं उनकी जज नहीं रह गई। मैं उनके विश्वासोंकी गहराईमें नहीं गई। मुझे अपने कामसे ही छुट्टी नहीं है। लेकिन मैं देखती हूँ कि अगर सरकार इसपर भी हमारी आज़ादीकी रक्षा नहीं कर सकती, बल्कि उसमें दखल देनेको आती है, तो कैसे कहा जा सकता है कि क्रान्तिकारी सब बहके हुए हैं? मैं सरकारसे तनखाह नहीं पाती कि उसके सिवा और किसीका खयाल न रखूँ। कानूनकी रक्षाके लिए सरकारके पास थोड़े लोग नहीं हैं। इससे

सरकारकी ताकतको कम समझकर मैं भेदिएके कामकी जिम्मेदारी अपनी नहीं मान सकती । ”

मैं उनकी इस अवस्थापर बड़े विस्मयमें पड़ा । सामना करनेकी ऐसी दृढ़ता उनमें पाऊँगा, यह मेरी कल्पनामें नहीं था । सोचा था कि भूत-प्रेत माननेवाली कल्याणी इस समय कातर न बन आई हों ।

और भी पता चला कि इधर कई वर्षोंसे पाल उनसे बराबर आर्थिक सहायता पाता रहा है । अक्सर उनके यहाँ ठहरा है । उसके आग्रहपर उन्होंने कह दिया है कि सिपाहीसे लाभ उठानेवाले उसको हथियार दे सकते हैं, पर सिपाही बननेवाले आदमीकी माँ-बहिन तो उसे अपने स्नेहकी सेवा ही देगी । और कौन जानता है कि सिपाहीके जीवनको हथियारोंसे अधिक उस स्नेहसे बल नहीं प्राप्त होता । इससे हृदयसे अन्य प्रयोजन साधनेकी मत सोचो, स्नेह ही उसका समुचित दान है ।

लेकिन मैंने फिर भी समझाया । कहा—अपने सम्बन्धोंमें व्यक्तिको सावधान रहना चाहिए ।

कल्याणीने कहा—मैं इस विषयमें लोकमतको प्रधानता नहीं देती, नहीं दूँगी । जो जितना अभागा है सहानुभूतिकी उसे उतनी ही जरूरत है । साधुको अकेला भी छोड़ा जा सकता है, पर अभियुक्तको परित्यक्त रखना फोड़ेसे फाहेको उतार कर उसे उधाड़ा रखना है ।

तात्पर्य, मैं उस विषयमें उन्हें मोड़ नहीं सका । मालूम

हुआ कि डाक्टर साहबने ही पालका परिचय उन्हें कराया था। उस परिचयको कायम रखनेमें अब खुद उनको आपत्ति होने लगी है। पर पाल सुशील लड़का है, तिसपर कल्याणीका कहना था, विपदाके समय किसीसे विमुख हुआ ही कैसे जा सकता है ?

इस बार कोई कातरता उनके मुखपर मैंने नहीं देखी। बल्कि साहस, संकल्प और कटिबद्धता ही वहाँ दिखाई दी। मुझे अनुभव हुआ कि नारी यदि कातर है तो वही एक जगह सतेज भी है। स्नेहके पक्षमें ही वह कोमल है; पर उस स्नेहको लेकर ही वह अतिशय दृढ़ भी हो सकती है।

डाक्टरके विषयमें मालूम हुआ कि उनकी अब भी वही स्थिति है। वह रुष्ट हैं और हठपर डटे हैं। जाने वह कब आवें। जो हो, उसकी चिन्ता नहीं। भाग्य अनिवार्य है....इत्यादि।

पर इन सब बातोंसे छूटकर उन्होंने मुझे उस हत्यावाली बातकी याद दिलाई। पूछा—आपको विश्वास नहीं आया था न। और अब भी विश्वास नहीं है। पर आज देखिएगा—

मैं नहीं समझा। पूछा—क्या ?

बोलीं—अभी कुछ दिन और ठहरिए।

मुझे अचरज था कि उस व्यर्थ-सी बातपर उनका मन किस तरह अटका हुआ है। पूछा—क्या उस बारेमें आप और भी परेशान रही हैं ?

हँसकर बोलीं—मैं मालूम करना चाहती हूँ। मालूम करूँगी।

वह सुंदरी युवती मुझे बार-बार दीखती है, बार-बार खींचती है। सोचती हूँ, वह हम सबकी प्रतिनिधि है। जीवन क्या है ? एक शहादत है। शास्त्र कहते हैं, यज्ञ है। पर स्त्री-जीवन यज्ञ नहीं, उसका कुण्ड है।....

कहते-कहते चेहरेपर उनके चारों ओर वही आतुर अंधि-यारा-सा दीख आया जो मुझे जाने कैसा लगता है।

मैंने कहा—छोड़िए छोड़िए।

वह बोलीं—मर कर आदमीकी क्या गति होती है, क्या इस बारेमें किसीको कुछ भी पता नहीं है ? पुनर्जन्म—क्या वह होता है ?

उनके मुँहसे इस तरहकी बातें सुनकर जी-बहलाव नहीं होता। वे तब तनिक भी शास्त्रीय नहीं जान पड़तीं। जैसे उनके पीछे घाव और दर्द भी हों। मानों पुनर्जन्मका प्रश्न तात्त्विक और वैज्ञानिक हो ही नहीं, बल्कि एकदम निजी और तात्कालिक हो। जैसे वह उन्हें मथ रहा हो। जिनके पास अतिरिक्त समय और बुद्धि है वह पहेलीकी जगह इन बातोंको ले सकते हैं। तब उनसे चित्त-विनोद होता है। पर कल्याणीके मुखसे आकर उन बातोंमें संवेदन जान पड़ता था। वे दूर नहीं, एकदम हृदयकी धड़कनकी तरह निकट मालूम होतीं थीं। वे जीको बिना छुए नहीं रहती थीं।

फिर भी मैंने हठात् कहा—उन बातोंका किसीने उत्तर नहीं पाया है। उत्तर है नहीं। इससे उन प्रश्नोंको भी नहीं होना चाहिए।

पर उनका मन अशान्त था। बोलीं—तो मरकर आदमीका प्रेत यहीं भकटता रहता है ? आत्मा दूसरा जन्म लेती है, या न्यायके दिनकी प्रतीक्षामें मरनेके बाद मानवात्मा सोई रहती है ? मैं जानना चाहती हूँ। मरनेके बाद मेरा क्या होगा ? दुनियाको अभी तो एकदम मैं छोड़ना नहीं चाहती। अभी मेरी उम्र—लेकिन—

मैंने कहा—छोड़िए भी। इन बातोंके लिए आप मन खाली क्यों रखती हैं। इतना तो आपको काम-धाम रहता है। फिर भी—

लज्जित और मंदभावसे बोलीं—हाँ, काम है इसीसे मैं बची हूँ। नहीं तो अब तक क्या मैं जीती बचती ? ऐसा लगता है जैसे हर घड़ी कोई मुझे यहाँसे ऊपर बुलाता रहता है। जैसे घर यह नहीं है, यह भ्रम है। आप बताइए, घर यह है ? फिर पार क्या है ?

मुझे उन बातोंको सुनकर कष्ट होता था। जैसे भीतरसे कोई प्राण उलीचकर बाहर कर रहा हो। भीतर सब रिक्त हो जाय तो क्या लेकर टिका जायगा ! यदि यहाँका सब माया ही है और अज्ञेय विधान ही सत्य है तो एक-एक दिन होकर कटनेवाला जीवन किस सहारे कटे ? आए दिन मनमें उठनेवाले ऐहिक संकल्प-विकल्पोंको लेकर हम जी लिया करते हैं। उन्हें ही यदि भ्रम कहकर हमसे छीन लिया जाय तो पास फिर क्या रह जायगा ? तब जीना होगा कैसे ? इस लिए ऐसी बातोंका सामना मुझसे नहीं मिलता। इससे मैंने ज्यों-ज्यों

बातको तोड़ा। और जब मैं वहाँसे लौटा तो एक बोझ मेरे मनमें था। एक प्रकारकी शंका कि यह स्त्री अपना क्या कर रही है ? इसको शायद सांत्वना कहीं नहीं है। सब कुछ है, पर कुछ नहीं है। उसे क्या सता रहा है ? बाहर क्या खींच रहा है, भीतर क्या धधक रहा है ?

१६

भीतर बाहर, ये दो शब्द हैं। पर वे दो नहीं हैं। प्रकृतमें एक ही हैं। दो होकर भी एक, जैसे ओर और छोर। और जहाँ ऐसा नहीं है, जहाँ उनमें सचमुच विरोध हो पड़ा है, वहीं क्लेश है। इस तरह क्लेश मानवीय सृष्टि है। वस्तुतः वह नहीं है।

तभी तो जगत् नाम द्वन्द्वका है। द्वन्द्वके माने हैं दोके बीचका अनिर्वाह। यह दोके, अथवा अनेकके, बीच एकताका अभाव ही हमारी समस्या है।

अर्थात् सत्यमें इस जगत्का कोई कुछ परस्पर सर्वथा असंबद्ध नहीं है। जो अवकाश बीचमें दीखता है, वह रिक्त नकार नहीं है। योग-वियोगके तरह तरहके अलक्ष्य तंतु उसमें भरे हैं।

परिणामतः व्यक्ति और परिस्थिति, ये दो भिन्न सत्ताएँ नहीं हैं। एकको दूसरेकी परिभाषामें समझा जा सकता है। व्यक्ति परिस्थितिका फल है और परिस्थितियोंका निर्माण भी व्यक्ति ही करता है।

भीतरका बाहरके साथ नाता अनिवार्य है। जन्मसे ही कोई कुछ नहीं होता, कर्मसे भी होता है। कर्म-संभावना अन्तःप्रेरणाके साथ बाह्य साधनके संयोगसे बनती है। अन्तर्भावना ही सब नहीं है, बाह्य उपयोगिता भी बहुत कुछ है। अनुपयोगी भावना कर्महीन और फल-हीन होगी और वही इच्छा यहाँ कृतकार्य होगी जो उपयोग-युक्त हो सकती है। परिस्थितिके साथ जिसका निर्वाह नहीं, उसमें संभावना भी नहीं। भविष्यको वह उतारेगा जिसका वर्तमान पुष्ट होगा। जो स्थितिसे तत्सम नहीं, उसमें नई परिस्थितिके निर्माणकी भी शक्ति नहीं।

इस भाँति कोई भी एकाकी नहीं है और किसीका कोई अलग स्वत्व नहीं है। सब अनुभवसे बनते हैं और सब काल-गतिमें अपनी जगह रखते हैं। सबकी संभावना उनकी विशिष्ट परिस्थितियोंके मध्य ही है। कार्य अकारण नहीं होता और व्यक्तिके सामाजिक चरित्रके कारण तात्कालिक समाज-स्थितिमें खोजे जा सकते हैं।

इससे मैं जानता चाहता हूँ कि कल्याणी असरानीके स्वभावमें जो मृत्यु-तत्त्वका एक स्पष्ट खिंचाव नज़र आता है, वह यदि प्रतिक्रिया है, तो किन घटनाओंकी प्रतिक्रिया है। उनकी धर्म-भावना किस व्यवहार-गत विवशताके कारण है। जानना चाहता हूँ, लेकिन जान नहीं पाता। देखता हूँ कि अपने व्यवसायमें वह सावधान हैं, कर्तव्यमें तत्पर। कर्मस्खलन कहीं नहीं है। फिर भी एक अशांति, एक दमन, एक

विचिकित्सा जो उनमें दिखाई देती है, वह क्या है ? और वह क्यों है ?

लोग हैं जो इन्द्रिय-रसमें रत रहते हैं पर मौतका डर उन्हें नहीं । ज़रा-सी बातपर चाकू निकालकर मर सकते हैं और मार सकते हैं । जानका मोह उन्हें छू तक नहीं जाता । क्या वह मोह अनिष्ट नहीं है ? और क्या मौतका ध्यान मौतके मोहमेंसे ही नहीं उठता ? मौतकी खींचका नाम है मौतका भय । वह भय कल्याणी असरानीपर फिर इतनी प्रबलतासे अपना प्रभाव क्यों डाले हुए है ? वह इष्ट है कि अनिष्ट, प्रतिक्रियात्मक है या विकासात्मक, इससे उनको शक्ति प्राप्त हो रही है या शक्तिका न्हास हो रहा है, यह मुझे कुछ स्पष्ट समझमें नहीं आता । फिर भी सब मिला कर मन यह मानता है कि यह मानवात्मा विकास-पथपर है ।

पर समझ-समझकी बातें हैं । हरेककी समझ अपनी है । अपनेसे बढ़कर किसीके लिए दूसरेकी समझ होना कठिन है । अर्थात् एकके लिए दूसरेकी समझ झूठ है । इस तरह सारी ही समझें झूठ हैं । यथार्थ यथार्थ है और तत्सम्बन्धी हमारी समझें (ज्ञान-विज्ञान) हमारे ही घरौंदे हैं । सच सबके पार है । इसी लिए कल्याणीकी कहानी कहते समय आलोचना-विवेचनाकी व्यर्थतासे मैं बचूँ । सब दिमागी समझाव है । मैं तो घटना ही कहता चलूँ । घटनामें स्वयं सत्यकी वाणीका प्रस्ताव है । उसके आलोड़नमें भला क्या रखा है ? तिसपर कल्याणीका यह जीवन-चरित्र नहीं है । उनके व्यक्तित्वको चारों ओरसे

ले कर विश्लेषणद्वारा पुनर्निर्माण करनेकी मेरी इच्छा नहीं है । यह तो बस कहानी है जिसमें संवेदन हुआ तो मैंने भर पाया । सहानुभूतिसे आगे मुझे क्या चाहिए ? पात्र यदि चाहिए तो उसीको टिकानेके लिए । चरित्र लिखनेकी मेरी ताब नहीं । जो मर्त्य है और अब स्वर्गस्थ है, उसकी मूर्ति गढ़नेका मैं कष्ट उठाऊँ तो क्यों ? बस कुछ यादकी बातें कहता हूँ कि कहीं हमारा चित्त छू जाय और उसमें रसका स्रोत खुल आय ।

इस बार साग्रह निमंत्रणपर जब मैं उधर गया तो मुझे दंग रह जाना पड़ा । डाइंग रूममें खानेका आयोजन था । आयोजन भी क्या—सब सेट एकदम नया चाँदीका ! कल्याणी व्यस्त थीं और खुद सर्व कर रही थीं । अभ्यागत थे कुल एक अकेले । मैं उनको पहिचानता नहीं था ।

जैसे मैं वहाँ अप्रत्याशित पहुँचा होऊँ । कल्याणीने अकृत्रिम विस्मयसे कहा—ओः, आप आ गए । मैं डरती थी कि कहीं आप न आवें ।

परिचय कराया गया कि मैं अमुक हूँ और आप मि० देवलालीकर हैं । सिनेमा-प्रोप्राइटर, मशहूर—

देवलालीकर शिष्टताकी मूर्ति मादूम हुए । उन्होंने मेरे परिचयपर अपनेको कृतार्थ प्रकट किया ।

उस रोज़ पहली बार मैंने कल्याणीको उस उत्सुक रूपमें देखा । वह रूप मेरी यादपर अंकित है । यत्न-साध्य उनकी सजा थी । उल्लासका अतिरेक मादूम होता था । मानों साकार अभ्यर्थना हों ।

उन्होंने साग्रह पूछा—आप (खानेमें) शरीक हुआ न ?
जी नहीं, यह नहीं—

मैंने कहा—मुझे क्षमा ही किया जाय । मेरा समय आप जानती हैं ।

बोलीं—क्या मैं पूछ सकती हूँ कि आपने सत्-युग छोड़ हमारे साथ कलि-युगमें पैदा होनेका कष्ट क्यों किया है ? सुनिए, खानेका नहीं, साथका सवाल है । खाइए चाहे नहीं, साथ तो दीजिएगा ?

मैंने खड़े होकर कहा—तो आप छोड़िए । आप बैठिए, मैं सर्व करता हूँ ।

बोलीं—वाह, स्त्री और अपना अधिकार छोड़ दे ? आप बैठिए, बैठिए । खानेकी मेज़ क्या मेज़ ही है ? जी नहीं, वह संस्था है । वह मेलका माध्यम है । क्यों मि० देवलालीकर ?

अतिथिने समर्थनमें कुछ कहना चाहा कि कल्याणी उधर बिना ध्यान दिए ही मुझसे बोलीं—जी नहीं, आज यहाँ किसीको क्षमा नहीं मिल सकती । आगे कुर्सी खींचिए ।

मैंने कहा—मुझे क्षमा करनेकी तो आप आदी हो गई हैं ।

खैर । उस समयकी कल्याणीका चित्र मुझे भूलता नहीं है । जैसे वह परीक्षापर हों । उनका तबका वाक्-चातुर्य मुझे अचंभेमें डालता था । न जाने कहाँ-कहाँकी बातें उन्होंने कीं । राजनीति, सोसायटी, सिनेमा, स्कैण्डल, अध्यात्म । मानो उन्हें कुछ निषिद्ध और अप्राप्य नहीं रखना है । बीचमें अंग्रेजी तो खुल कर आती ही थी, फ्रेंच भी आ जाती

थी। कभी अपनी सिन्धी बोलकर कहतीं कि मराठी उसकी तुलनामें कर्ण-कटु है, क्यों मि० देवलालीकर ?—मालूम होता है अपनी भाषा मराठी होनेके कारण ही मि० देवलालीकर थोड़ा बोल रहे हैं—

इस-उस तरहकी बातें करके उन्होंने अतिथिको संकोच बिल्कुल न रहने दिया। देवलालीकर भी बात-चीतमें खुलकर भाग लेने लगे। उस अवसरपर हलकी शराब भी थी और कल्याणीने उससे बहुत परहेज़ नहीं दिखाया।

मैं उस चित्रको लम्बा नहीं खींचना चाहता। न मैं अपने इस विस्मयपर रुकना चाहता हूँ कि देवलालीकर कौन थे, कैसे वहाँ पहुँचे और मैं वहाँ क्यों उस समय बुलाया गया ?

कल्याणीने देवलालीकरसे बहुतसे प्रश्न किए और जिरह की। प्रकट हुआ कि देवलालीकर विधुर हैं, विवाह नहीं करेंगे। हाँ, कई वर्ष हुए इस तरफ़ रहते थे। जी नहीं, यह नहीं, दूसरा मकान था। पत्नी बहुत पहले गत हो गई। विदुषी थीं, योग्य थीं। सुंदरी ? मुझे लज्जित न कीजिए। मुझे कष्ट होता है। हाँ सुंदरी थीं। उन्हें दिक् हो गया था। छुटपनसे दिक् हो गया था।....इत्यादि।

सच यह है कि मैं वहाँ धीमे धीमे अपनेको व्यर्थ अनुभव कर रहा था। मेरा वहाँ क्या मतलब था ? कल्याणीको देवलालीकरमें क्या दिलचस्पी है, मुझे इसका अनुमान न था। लगता था कि कहीं कल्याणी उनपर मुग्ध होनेको ही तयार न हों। मेरा मन इस संभावनापर जाकर विशेष सुख अनुभव

नहीं कर रहा था। लेकिन असभ्यता न समझी जाय इस खयालसे मैं वहाँ बैठा ही रहा, उठकर नहीं आ सका।

कल्याणीने देवलालीकरसे कहा—आप विधुर किस हकसे रहना चाहते हैं ?

देवलालीकरने क्षमा चाही और कहा—मेरा उस ओर ध्यान नहीं है।

कल्याणीने कहा—जी नहीं, आपकी अवस्था ही कितनी है। अकेली जिन्दगी गुलत है। आपकी आमदनी अच्छी है। क्या मैं आपकी कुछ सहायता नहीं कर सकती ?

देवलालीकरका दावा शायद विरक्त पुरुष होनेका न होगा। उन्होंने कहा—आप विनोद करती हैं।

कल्याणी बोली—यह प्रसन्नताकी बात नहीं है कि मैं विवाहित हूँ। विवाहित न होती तो मैं सहायता कर सकती। स्त्री पुरुषकी संपात्ति नहीं है। क्यों वकील साहब ?

मैं कल्याणीके रंग-ढंग देखकर कुछ असमंजसमें था और कुछ नहीं बोला। देवलालीकर जवाबमें इधर-उधर करते रहे। यह स्पष्ट हो गया कि भीष्म प्रतिज्ञा उनकी नहीं है। फिर भी—

लेकिन कल्याणीने बिना कुछ सुने गंभीरतापूर्वक कहना जारी रखा—जिस किसीके पास काफी आमदनी हो उसे अकेला रहनेका हक समाजमें रहकर नहीं है। क्योंकि योग्य कन्याएँ और स्त्रियाँ काफी संख्यामें निराश्रित हैं। और कुछ नहीं तो उन्हें सहारा देना समर्थ पुरुषोंका धर्म है। दूरकी क्यों मैं अपने तरफकी कहती हूँ। मेरी ही कई सहेलियाँ हैं जो योग्य

हैं । पर उपयुक्त साथी उन्हें नहीं मिलता ।...इत्यादि ।

देवलालीकरने अन्तमें स्वीकार किया कि वह बात अविचारणीय तो एकदम उनके लिए नहीं है और सचमुच ही अतीतपर रहना कठिन होता है ।

मैं कल्याणीकी उस रोज़की अवस्थाको नहीं समझ सका । अतिरिक्त भूषासे सज्जित, वह पर्याप्तसे अधिक आकर्षक मालूम होती थीं । मर्यादाका ध्यान मानो उनके योग्य नहीं रह गया था । बोलीं—हिन्दुस्थानके प्रान्त प्रान्तमें अभी बहुत फ़ासला है, तभी वह गुलाम है । देखिए, मैं सिन्धी हूँ, आप महाराष्ट्री हैं, ये यू. पी. के हैं । लेकिन हम सबको एक क्यों नहीं होना चाहिए, बताइए तो ? पुराने विचार पुराने हैं । यह ग़लत है कि विवाह छोटे दाइरोंमें हों । इससे संतति क्षीण होती है । मैं डाक्टर हूँ, इस बातको जानती हूँ । संबंध सुदूर होना चाहिए । जितना अन्तर होगा, मेलसे उतना ही उत्तम फल प्राप्त होगा । यह तो प्रयोगसिद्ध है । आपने कृपा की कि आप आये । यहाँ हमारा अपना कोई नहीं है । (हँसकर मेरी ओर) एक यह हैं, पर ये तो मेरे लिये अभिभावक जितने बुजुर्ग हैं । आप—

देवलालीकर कृतज्ञ थे । उन्होंने प्रकट किया कि किसी सेवाके योग्य-समझे जाकर वह कृतार्थ होंगे ।

देवलालीकरके जानेके बाद उन्होंने मुझे कहा—ये देवलालीकर थे । अपने देखा ?

मैंने कहा—सो ?

“ आपने उन्हें अच्छी तरह नहीं देखा । ”

मैंने जानना चाहा कि इसका क्या अभिप्राय है ।

बोलीं—जो हुलिया मैंने बताया था क्या वह बहुत कुछ इनसे नहीं मिलता ? मैं कहती हूँ, यही आदमी है ।

सुनकर एकाएक तो मैं उनके अभिप्रायको समझा नहीं । पर जब समझा तब मैंने मानो झिड़कीके साथ कहा—यह उचित नहीं है । एक भले आदमीका यह अपमान है । यह अन्याय है ।

उन्होंने जोरसे कहा—क्या आप नहीं मानते कि यह आदमी अपनी पत्नीकी हत्या कर सकता है ? मैं कहती हूँ, यह सच है ।

मैंने बात टालकर कहा—आखिर आप उससे चाहती क्या हैं ?

“क्या चाहती हूँ ? आप क्या समझते हैं मैं चाहती हूँ ? आप वेशक यह नहीं समझते कि मैं उनकी पत्नी होना चाहती हूँ ? ”

मैंने कहा—आपको क्या हो रहा है ? सँभलकर बात कीजिए ।

क्या उन्हें नशा हो रहा था ? मुझे ऐसा ही मालूम हुआ । बोलीं—मैं अपने सर्वनाशसे डरती नहीं हूँ । मुझपर स्वामी नहीं है । मैं आप अपनी स्वामिनी हूँ । मैं चाहूँ तो कौन मेरा नरक रोक सकता है ?

मैंने कहा—होशमें आइए । देवलालीकरको आप पहलेसे नहीं जानतीं, यह मैं जानता हूँ । वह सीधा आदमी मालूम होता है । हममें किसके अन्दर असुर नहीं है । क्या आप उस

असुरको भड़काना चाहती हैं ? आपका वहम वहम है ।
उसके पीछे अपनेको और दूसरेको आप बरबाद नहीं कर सकतीं ।

उन्होंने अपनी स्थिर दृष्टि मुझपर डाली । कहा—स्त्रीका बदला स्त्री नहीं लेगी तो कौन लेगा, बताइए तो ?

मैंने साश्चर्य कहा—कैसा बदला ? यह आप क्या कहती हैं ?

बोलीं—उस कमसिन स्त्रीकी भोली आँखें मुझे रोज़ दीखती हैं । वह मानों किसीको दोष नहीं देती । जैसे स्त्री सब कुछ सहनेके लिए है । लेकिन उन्हीं आँखोंको देख-देख कर मुझे लगता है कि स्त्री गौ नहीं है । गौ बनकर ही उसने स्त्रित्व गँवाया । वह अब कुछ और बनकर अपनेको पा सकती है । मैं भी गौ थी, लेकिन इससे मैं क्या बन सकी ? अब मैं गौ कब तक रहूँ ? हाँ, स्त्रीका बदला स्त्री लेगी ।—

मैंने कहा—ठहरिए, आपको मालूम भी है कि क्या कह रही हैं ?

“ शायद नहीं मालूम । मुझे शायद इस वक्त नशा है । पर नशा मैंने किया है ! और क्या करूँ ? एक वह हैं जो बड़ी हिम्मत दिखाकर मुझे छोड़कर चले गये हैं । एक ये हैं, जिन्हें मैं पक्का जानती हूँ कि इन्होंने स्त्रीकी हत्या की है । एक आप हैं जो किसीको कुछ सहारा नहीं देंगे । फिर मैं क्या करूँ ? नशा करती हूँ, तो कौन कहनेवाला है कि क्यों करती हूँ ? धर्म भी किया है, पर करके देख लिया है । उससे क्या हुआ ? तबियत होती है कि सब फाड़ दूँ, सब फेंक दूँ ।

मैंने ईश्वरमें विश्वास किया। मैं उसकी राह चली, इस घड़ी तक चली। चलते चलते मेरे सामने पड़ते हैं, यह देवलालीकर। बचकर मैं कहाँ जाऊँ ? उनके सामने पर और राह मुझे बन्द है। ईश्वरकी राहपर अनीश्वरता मिलती है, तब मैं क्या करूँ ? इससे अब मैं कहती हूँ कि अच्छा, यही हो। मैं भी अब और कुछ नहीं चाहती। मैं निराली नहीं हूँ। मेरा मन जानता है, मैं लाचार हूँ। तो नशा ही करूँगी। मैं सब भूल जाना चाहती हूँ। मैं नफरत करना चाहती हूँ। अपनेसे, सबसे। ईश्वर प्रेम है और प्रेम प्रवंचना है। इससे ईश्वर प्रवंचना है।

लेकिन सचमुच उन्हें नशा चढ़ता आ रहा था। मैंने तब जाना कि नशा क्या होता है। उससे विवेकका ढक्कन ढीला हो जाता है और अन्तर्गत चेतना खुलने लगती है।

बढ़ते बढ़ते वह जाने क्या क्या कहने लगीं। कहा—मैं पापिष्ठा हूँ, मुझे मत छुओ। मुझे कोढ़ क्यों न हुआ। धर्मके लायक मैं नहीं हूँ। वह गये हैं, जाने दो। मैं और कुछ नहीं हो सकती। मैं क्या हो सकती हूँ ? देख लिया, देख लिया। आप मुझे नफरत करते हैं, या आप मुझपर मुग्ध हैं ? ओहो हो हो ! मैं आदमीकी आँखोंमें दो ही बातें देखती हूँ। लेकिन मैं किसीके लायक नहीं हूँ। मैं नफरत नहीं चाहती, प्रेम नहीं चाहती। अरे, मुझे अकेला छोड़ दो। अकेली मरने दो।....

सचमुच स्थिति मेरे वशसे बाहर होती जा रही थी। मैं अपनी जगहसे उठा।

उन्होंने कहा—हाँ आप जाइए । मुझे होश है । सभी जा सकते हैं ।

मैंने जोरसे ताकीदके स्वरमें कहा—आप अब बोलिए नहीं, एकदम चुप रहिए ।

वह एकदम चुप हो गई और डरी-सी मुझे देखने लगीं ।

नौकरको बुलाकर मैंने खानेका सब सामान बाहर भिजवाया । वह चुपचाप देखती रहीं । मैंने पास जाकर कहा—अब आप उठिए ।

वह उठ आई । जैसे उनमें अपनापन कुछ न हो । सहारे-से लाकर मैंने उन्हें सोफ़ापर लिटा दिया । मँगाकर एक शाल उढ़ा दिया । कहा कि अब आप जरा सोनेकी कोशिश कीजिए ।

वह चुपचाप लेटी रहीं । बोलीं कुछ नहीं । जाने कहाँ एकटक देख रही थीं । देखते-देखते उनकी आँखोंसे आँसू भरने लगे । मैंने जोरसे कहा—यह क्या करती हैं ? सो जाइए ।

इसपर उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर मुझे नमस्कार किया जिसका कि मैं कुछ भी आशय नहीं समझा । पास जाकर मैंने आश्वासनकी थपकियाँ देनी चाहीं, लेकिन उन्होंने अपने दोनों हाथोंसे मेरे दाहने हाथको पकड़ा और उसे बार-बार अपने माथेसे छुआते हुए वे उसी तरह तार-तार आँसू रोती रहीं ।

कुछ देर तो मैं विमूढ़ रहा, फिर हठात् फिड़कीके साथ हाथ छुड़ाकर रूमालसे उनके आँसू पोंछे । कहा—दिल क्यों हल्का करती हैं । क्या बात है, कोई बात नहीं ।

बोलीं—मैं किसी लायक नहीं हूँ। मैं सबकी माफी चाहती हूँ।

मैंने कहा—देखिए, आप थोड़ी देर आराम करेंगी, और कुछ न करेंगी। सुनती हैं? चित्तको थिर कीजिए। बात कोई भी तो नहीं है। मैं अब जाता हूँ।

धीमे-धीमे उनके आँसू बन्द हो आये। पर वह उठी नहीं। कहा—मैं सोऊँगी, आप जाइए।

मैंने सोचा कि एक नींद चाहिए। बस खुमारी उतर जायगी। विशेष कुछ है नहीं। सो मैं चला आया।

१७

वह तो कुछ बात न थी। सुबह तक तबियत सँभल आई ही होगी। इसलिए मैं उधर नहीं गया। जाते सुख नहीं होता था, फिझक होती थी। मिलकर मनके भीतर बिथा ही छिड़ती थी।

सो मैंने आदमी भेजकर सूचना पा ली कि दवाखाना खुला है और वह अपने कामपर हैं और सोच लिया—चलो, ठीक है।

श्रीधरको आप भूले तो नहीं? पर आप भूलें, वह नहीं, भूलेंगे। पूरे अध्यवसायी जीव हैं। मैं तो मनमें उनको शाबाशी दिया करता हूँ। प्रोफेसर हैं, पर प्रोफेसरसे ज्यादा जिन्दादिल हैं। नयेसे नये काटके कपड़े तनपर रखते हैं तो उसी तरह नयेसे नये नमककी बातें जीभपर रखते हैं। जीभ ही मैं कटूँगा, मन नहीं कटूँगा, क्यों कि बातें चाहे ऐसी-वैसी वह

कर जाये, मन उनका बे-मैल है। और किसीका अशुभ उनसे नहीं हो सकता।

नहीं जानता कि श्रीधरको क्यों कल्याणीका प्रसंग प्रिय है। तरह तरहकी बातें लाते हैं और सुना देते हैं। मैं कहता हूँ कि श्रीधर, छोड़ो भी। लोगोंकी आत्माओंकी चिन्ताका बोझ लेकर चलनेकी जरूरत क्यों पैदा किया करते हो? अपनी क्या तुम्हें काफी नहीं है?

पर श्रीधर कहता कि अपनी आत्मा तो मैंने बेच खाई है। यानी अब वह पेटके अंदर ऐसी सुरक्षित है कि कोई चिन्ता उसे छू नहीं सकती। इस लिए मुझे अब दूसरोंकी आत्माओंके विषयमें सोचनेके अतिरिक्त जिन्दगीमें कोई और काम बाकी नहीं रह जाता है।

मैं कहता हूँ—श्रीधर, तू ऐसे कैसी दर्शन शास्त्रकी प्रोफेसरी करता है? वह कहता है—अजी मेरी प्रोफेसरी धड़केसे चलती है। सो बताऊँ, क्यों? इस लिए कि मैं एकदम नास्तिक हूँ। खुद कुछ नहीं मानता, इसलिए सबको सब कुछ मानने देता हूँ।

बात ठीक है। श्रीधर कुछ नहीं मानता दीखता, इस लिए जुबानका ही असावधान वह है। पर उसीकी वजहसे वह बेहद खुला भी है। गाँठ उसमें नहीं है। मनके विज्ञानवालोंने जिसका नाम रक्खा है Complex वह चीज़ श्रीधरमें कुछ काल बनती भी है तो भट्ट घुल रहती है। कड़ी गुठलीकी मानिन्द अंदर अलग बजती हुई वह नहीं रहती।

मैंने कहा—तो देवलालीकरको तुम जानते हो । यह भी जानते हो कि वह सही आदमी नहीं हैं । क्यों ?

बोला—हाँ । डाक्टरनी साहबा जो आजकल रोज़ मोती-पेलेसमें जाती हैं, यह देवलालीकरकी सफलता हो सकती है, नेकी नहीं ।

मैंने कहा—छोड़ो छोड़ो । मुझे खुशी है कि वह सिनेमा काफी देखने लगी हैं । ज़रूरत है कि उनका मन बहले ।

श्रीधर हँसा । बोला—ज़रूर ज़रूरत है ।

मैंने कहा—खैर, तुम देवलालीकरकी कहो । कुछ उनका इतिहास भी जानते हा ?

श्रीधर— इतिहास ? रंगीन आदमी हैं । उनका अतीत एकदम घटनाहीन तो क्या रहा होगा ।

मैं—पर तुम कुछ जानते हो ?

श्रीधर—(हँसकर) तो आप भी चाहने लगे न कि कोई किसीका कुछ जाने । कहते तो थे कि—

खैर, श्रीधरको मनका काम मिला । अगली बार उन्होंने बहुत कुछ लाकर सुनाया । उनकी कहानीमें दिलचस्प बहुत कुछ था, तो निश्चय अप्रामाणिक भी काफी कुछ था । यह मेरे लिए तसल्लीकी बात थी कि कल्याणी अक्सर, चाहे फिर देवलालीकरके अनुरोध पर ही हो, सिनेमा देखने चली जाया करती हैं । यह स्वास्थ्य और साधारणताके लक्षण हैं । मैं इधर कल्याणीमें असाधारणताकी बीमारीके चिह्न देखकर कुछ परेशान-सा रहता था ।

श्रीधर बोले—अब ठाट देखिएगा !

मैंने कहा—क्या मतलब ?

बोले—नई दिल्लीमें कोठी ली जा रही है ।

मैंने कहा—तो ?

श्रीधरने कहा—तो क्या ? सब अनुकूलता है । मुझे तो खयाल होता है कि बीसवीं सदीमें भी मुगल जमानेकी मलका जैसी तबियत रखनेवाली आखिर कोई हो सकती है ! मैं समझता था कि ज़माना जो जाता है वह आनेके लिए नहीं, लेकिन मालूम होता है कि ज़मानेकी चालसे और आदमीकी तबियतसे कोई वास्ता नहीं है ।

लेकिन छोड़िए श्रीधरको । आदमी भला है तो क्या अपनी सारी बातें हमें सुननेको लाचार करेगा ? कामकी बेकामकी ? जी, नहीं । बेकाम बातोंको हटाइए ।

इन्हीं दिनोंकी बात है कि पूरी दरेस पहने एक दरवान आया, सलाम दिया, और मेरे सामने एक बड़ा-सा लिफाफा रख दिया ।

मैंने कहा—क्या है ?

बोला—मेमसाबने दिया है ।

“कुछ कहा है ?”

“जी नहीं ।”

“अच्छा ।”

सलाम करके वह चला गया । लिफाफा खोला तो उसमें एक हिन्दी पत्रिका निकली । ऊपर चिट लगी थी—‘अमुक

पृष्ठको कृपया देखिए । उस पृष्ठपर रवीन्द्रनाथ ठाकुरका एक लेख था ‘तपोवन’ । उस लेखके बराबर हाशियेपर लाल पेन्सिलसे अंग्रेजीमें लिखा था—‘तपोवन या नई दिल्ली ?’ । प्रश्नवाचक चिह्नपर मालूम होता था कि पेन्सिल बार बार फिरती रहने दी गई है । वह अनुपातसे काफी बड़ा हो गया था ।

लेख पढ़कर मैंने एक ओर रख दिया ।

शामको उनके ड्राइवरने आकर सलाम दिया । बोला—
मेमसाबने भेजा है ।

मैंने पूछा—क्या कहा है ?

“कहा कुछ नहीं है, पूछा है—क्या आप उधर आयेंगे ?”

मैंने कहा—अच्छा ।

“क्या हुक्म है ? अभी चलें तो गाड़ी भेजी है ।”

मैं ड्राइवरके चेहरेमें देख सका कि मुझे न चलनेका अधि-
कार है, लेकिन वहाँ यह आशा नहीं है कि मैं तुरन्त नहीं
आ जाऊँगा ।

मैंने कहा—क्या बात है ?

“आज वह कहीं बाहर नहीं जा रही हैं । नीचे भी
कहलवा दिया है कि मरीजोंको एसिस्टेण्ट देख लें ।”

मैं साथ गया ।

वहाँ सचमुच मेरे सामने जो प्रश्न पेश हुआ वह यही
कि ‘तपोवन या नई दिल्ली ?’ ।

मैंने पूछा—मतलब क्या है ?

बोलीं—नई दिल्लीमें कोठी ले रही हूँ ।

मैंने कहा—खुशीकी बात है ।

बोलीं—तो यह रवीन्द्रनाथका तपोवन रंजकी बात है, यह मैं मानूँ ?

मैंने हँसकर कहा—तपोवन यह रवीन्द्रनाथका है ।

म्लानभावसे वह भी हँसीं । बोलीं—हाँ, मेरा वह नहीं है । मेरे लायक कोठी है । यही न ?

मैंने कहा—हाँ, क्यों नहीं । इसमें क्या बुरा है ?

वह झपटकर बोलीं—छोड़िए । बुरा भला देखा जायगा । कोठीमें सब नहीं रहते, भागवान रहते हैं । पर रवीन्द्रके लेखसे पहले भी कभी तपोवन उतरकर मनमें मेरे झूम आया है । सोचती हूँ पुराने ऋषि कैसे रहते होंगे । पर वह मनकी कमजोरी है । है न ? पुराने जमानेमें डाक्टरी कहाँ थी ? उन्नति कहाँ थी ? बोलिए, थी ?

मैंने कहा—अगर ये जाती हुई शताब्दियाँ व्यर्थ नहीं हैं तो मानना होगा कि पहलेसे हम पीछे नहीं हैं । हो उन्नति रही है ।

बोलीं—ठीक तो है । आप भी मेरी तरह उन्नत क्यों नहीं होते हैं ? कोठीमें जा रही हूँ । अधिक नहीं तो आकर जरूर देखिएगा, उन्नति कैसी दीखती है । देखकर सबक लीजिएगा ।

उस वक्त कहते तो मैंने हँसकर कह दिया—‘ जरूर ’, पर सच यह है कि हँसी मेरी झूठ थी । उस नारीके द्वन्द्वकी तीक्ष्णतापर मुझे कभी हर्ष नहीं हुआ है । आदमी हरघड़ी

अपनेपर दाँतेदार छुरी चलाता रहे, यह कोई हर्षकी बात है ? और जब जब मैं उस नारीके समक्ष हुआ हूँ, मुझे लगा किया है कि वह जीवनको किसी तरह मृत्युसे कम विषम नहीं रहने देना चाहती है ।

इसी लिए मैं उनका चित्र देते डरता हूँ । मुझे इस बातकी भी खुशी है कि कहानीमें रंग भरना मुझे नहीं आता । कोरी कोरी बातें ही यहाँ मैं दे सकता हूँ ।

सो बात बातमें वह बोली—उनका खत आया है—

मैं प्रसन्न होनेको तैयार हुआ ।

“—लिखा है कि कोठीमें कोई कमी न हो । पैसेकी तरफ न देखा जाय और बीस दिनके अंदर सब तैयार हो जाय ।

मैं सुनकर विस्मयसे उनकी तरफ देखता रहा ।

किंचित् हँसकर बोली—क्या आपको मालूम नहीं ? यह मार्च चल रहा है । अप्रैलमें—के प्रीमियर यहाँ आनेवाले हैं ।

—के प्रीमियर इस दिल्लीमें आनेवाले होंगे कि उस खबरको अखबारवाले सुभीतेके साथ हम सब तक यथावसर पहुँचा ही देंगे । कोई भला नागरिक उस खबरसे बचेगा नहीं । पर इन कल्याणीकी नई कोठी और इन प्रीमियरके नई दिल्लीमें आनेमें क्या संगति है सो मैंने जानना चाहा ।

कल्याणी कुछ लजाई, कुछ मुस्कराई, पर उन्होंने कहा ।

बात यह कि जो अब प्रीमियर हैं वह कभी प्रीमियर नहीं भी थे । तब विलायतमें बैरिस्टर बन रहे थे । कल्याणीका

वहींका परिचय है । परिचयमें गाढ़ता भी है । लेकिन यह तो निजी बात है, छोड़िए । प्रस्तुत बात यह कि डाक्टरने लिखा है कि कोठी ले रखो । प्रीमियरको अपने यहाँ ठहराना होगा । उनके लिए सार्वजनिक सत्कार और सम्मानका प्रबन्ध भी करना होगा । इसीलिए सब कुछ है ।

मैंने कहा—अच्छा तो है ।

पर वह बोलीं—मैं प्रीमियरको कतई नहीं जानती । मैं मित्रको जानती हूँ । लेकिन डाक्टरकी निगाहमें उनका प्रीमियरपन ही है । मित्रता उन्हें ईर्षणीय हो लेकिन प्रीमियरपन अभ्यर्थनीय है । यह क्या है ? मेरे स्नेह-संबंधको क्या यह जूँपर लगाना नहीं है ? मेरा तो लाजके मारे मरनेको जी चाहता है ।

उनका आंतरिक क्लेश उनकी मुद्रासे मुझपर प्रत्यक्ष हुए बिना न रहा । मैंने सान्त्वना दी । कहा—क्यों, ऐसा अनुचित तो मुझे इसमें कुछ दिखाई नहीं देता ।

खिझलाहटमें बोलीं—आप नहीं जानते, आप नहीं जानते । वह प्रीमियरसे मतलब साधना चाहते हैं । कांग्रेस-मंत्रित्व अवसर साधनेके लिए है ? इसमें ही मेरे स्नेह-परिचयका लाभ उठाया जायगा । क्या ऐसे हिंदुस्तान स्वतंत्र होगा ? क्या इसीका नाम व्यापार है ? भलाई है ? सुधार है ?

मैंने सरलतासे कहा—तो छोड़िए, मत शामिल होइए ।

सुनकर मानो आश्चर्यसे मेरी ओर देख उठीं—देखते देखते उन आँखोंमें ओस आ गई । बोलीं—क्या करूँ ? मैं क्या करूँ ?

मैंने कहा—क्यों ? इसमें कठिनाई क्या है ?

सुनकर वह कुछ देर फटी आँखोंसे मुझे देखती रह गई ।
 उन आँखोंपर पानी झलक रहा था । पर वह ठरका नहीं ।
 मानो वह जड़ हो आई । थोड़ी देर बाद वह बोली—आप
 पूछेंगे ही ? अच्छी बात है । मैं कहूँगी । कहती हूँ । मेरी
 अपनी कमजोरी कठिनाई है ।

कुछ देर रुकी रहकर फिर बोली—अपने प्रवासी मित्रका
 सार्वजनिक सम्मान मैं देखना चाहती हूँ । उसमें योग
 देना चाहती हूँ । आपसे लजाऊँगी नहीं । मुझसे उन मित्रको
 निराशा मिली । ऐसा पात्र दूसरा कौन होगा ? क्या आप
 जानते हैं कि वह अविवाहित हैं । जिदगीभर शायद
 अविवाहित रह जायँ ।....लेकिन मैं—मैं नहीं । मैंने
 अपनेको खींचे रक्खा । अब उनके इस नगरमें आनेपर क्या
 यह मुझसे हो भी सकेगा कि मैं कुछ न करूँ ? इससे मैं
 कोठी ले रही हूँ । इसमें रवीन्द्रनाथका तपोवन उजड़ा जा
 रहा है, इसमें मैं ही शायद छूटी जा रही हूँ । पर क्या
 करूँ ? खी अबला है ।

मैं इस सबके लिए तैयार न था । मेरा जी भीतरसे छू
 गया । मैं कब समझा था कि मैं अनायास पात्र बना दिया
 जाऊँगा कि किसीका मर्म मुझको लेकर व्यक्त हो । उन
 कल्याणीको सामने देखकर मैंने अनुभव किया कि व्यक्तित्वमें
 तहपर तह होती है । आत्माको कौन समझेगा ? आत्मा तो
 कूँएमें जल जैसी निर्मल है । पर कूँएमें भौंकते डर हो सकता
 है । उसमें उतरे कौन ?

इस स्थलपर जो व्यथा घनीभूत हो आई थी उसे मैंने जैसी तैसी बातें कहकर कुछ मद्धम किया। फिर पूछा—
डाक्टर आ रहे हैं ?

“हाँ। उनका विषाद दूर हो गया मालूम होता है।
उन्होंने खुलकर माफी माँग ली है।”

कहते हुए वह हँसी।

“—लिखा है मैं घबराऊँ नहीं। प्रीमियरका हमने रुख रक्खा तो पहले साल ही पचास हजार बन जायगा। आगे दूसरे ठेकेके काममें और अधिक भी बच सकता है। (वह फिर हँसी)। इस लिए अब उनके मनमें कोई विकार नहीं रह गया है। मुझे आशा है कि आप देखेंगे कि आनेपर वह सबसे प्रमत्तताका व्यवहार करते हैं। इस बार आप उनमें मनका मैल बिलकुल नहीं पायेंगे। उन्होंने पत्रमें मुझे बहुत बहुत प्रेम-संबोधन लिखे हैं। (फिर हँसी) आप सच मानें कि मैं उन्हें सच मान सकती हूँ। मेरा ध्यान उनसे दूर नहीं है। वह मुझे प्रेम करते हैं।”

कहकर एक करुण मुस्कराहटके भावसे उनका चेहरा पीला पड़ गया।

उनकी वैसी स्थिति मुझे असह्य ही हो आती है। उसका सामना मैं नहीं चाहता। उससे जगतके संबंधमें मनका त्रास बढ़ता है।

बात बदलनेके लिए मैंने पूछा—वह कब आ रहे हैं ?

“ लिखा है, काम निबटते ही पहुँचूँगा। यही कोई दस

बारह दिनोंमें । ”

मैंने कहा—इस बार आकर उन्ह जाना नहीं चाहिए । कामकी बात दूसरी है । और सुनिए, आपको इसके लिए मनमें थोड़ी लचक भी लानी पड़े तो क्या हर्ज है ?

बोलीं—कुछ हर्ज नहीं है ।

मैंने कहा—सुनिए, विधाताके हाथ अब भी तो हम जड़की भाँति है । जो होता है वही होता है । तब जान बूझकर हम जड जैसे बन जा सकें इसमें ही क्या सिद्धि नहीं माननी होगी ? सुनिए, आप और कुछ न सोचिए, उनकी खुशी कीजिए ।

बोलीं—यह क्या आप सचमुच मानते हैं कि मैं इसके अतिरिक्त कुछ और करती रही हूँ ? मैं यही चाहती हूँ कि कोई मुझे बताए कि मैं अपनेको कहाँ बचाती हूँ ।

मैंने कठोर होकर कहा—बचाती तो नहीं हैं, पर आपके मनका कुछ भाग जरूर बच जाता है ।

उस समय वह ऐसी कातर हो आई कि याद करके मैं अब भी सिहर जाता हूँ ।

अत्यंत द्रवित भावसे बोलीं—मनपर चाहती हूँ अंकुश रक्खूँ । पर पैनी चोट देती हूँ, मन उसके भी काबू नहीं आता । बताइए क्या कर लूँ ? मुझपर जहाँ मेरा वश नहीं है वहाँ आपसे पूछती तो हूँ कि बताइए, क्या करूँ ? कुछ बताइए कि एकदम जड हो जाऊँ । एक दवा है मौत, लेकिन उसके तो आप कायल नहीं मालूम होते हैं ।

उस समय मेरा हारना मानो वेदनाकी घनताको और भी सघन बना देना होता । सो मैंने मानो अपनेको ही टालते हुए कहा—आप फिर वही बात करने लगीं । कुछ हँसा खेला कीजिए न ।

सच ही उस बातसे उनकी मुद्रामें तनिक ढील आई । बोलीं—उसके लिए गई थी आपके घर दो एक बार । परिवार समाजमें कहाँ जाऊँ ? क्लब धोखा है । स्त्री आंदोलन खिलवाड़ है । वहाँ मुँहकी बातमें मनकी घात रहती है । घरमें मैं डाक्टर इतनी अधिक हूँ कि और कुछ भी नहीं । खाली होती हूँ तो अपनेसे घिर रहती हूँ । हँसू खेलूँ किसके साथ ? जो चारों तरफ मेरे अविश्वास और संदेह भरा रहता है उसके साथ ?

“ हमारे घर आना आपका क्यों बंद हो गया ? ”

“ उसे मैं जारी नहीं रख सकती । ”

“ क्यों ? ”

“सब बातोंमें ‘क्यों’ पूछते क्या कभी आप हिचकेंगे नहीं ?”

“ मुझे कोई कारण नहीं मिलता । ”

“ कारण, मैं अपना क्लेश बढ़ाना नहीं चाहती हूँ । ”

“ मैं उस बातको पूरी तरह नहीं समझा । ”

मेरे चेहरेपर अनाश्वस्त प्रश्न दीखता रहा होगा ।

बोलीं—आप क्या कहते हैं ? क्या यह कहते हैं कि साँपिन अपने जहरको लेकर सब जगह जहर फैलानेके लिए छूटी रहे ?

मुझे यह सुनकर बेहद बुरा मालूम हुआ । मैंने उठते हुए

कहा—तब तो मुझे चलना चाहिए, जहरसे बचना चाहिए ।

मैं सचमुच कठिन हो आया था । उन्होंने भी अपनी मुद्रामें बिना तनिक शिथिल हुए कहा—हाँ, जाइए ।

मैं जा न सका । सोफेको जरा और पास खींचा और बैठकर बोला—देखिए, यह सब आपका अस्पताल पीछे है आप पहले हैं । सुनती हैं ? बंद कीजिए अस्पताल, चलिए घर, वहाँ कुछ दिन रहिएगा । क्या हक है कि ऐसे आप अपनेको मारती रहें ?

देखता क्या हूँ कि उनका काठिन्य एक साथ भंग हो गया है और आँखोंमें आँसू आ चमके हैं । पर उन आँसुओंमें भी मुस्तराती हुई वह बोलीं—मैं कैसे जा सकती हूँ ? नई दिल्लीकी कोठीमें रहने जो मैं जा रही हूँ ।

मैंने कहा—तो क्षमा कीजिए । अब कभी मुझे याद न कीजिएगा ।

“ नहीं कहेँगी । लेकिन आप हृदयमें मेरे लिए क्षमा रखेंगे तो यही मेरे लिए बहुत होगा । ”

बातके इस तहतक आनेपर आगे क्या होता ? और आगे कुछ नहीं हुआ । सामने मेजपर दोनों कुहनी टेक हथेलियोंमें ठोड़ी रखकर मुझसे पार सामने जाने क्या देखती वह बैठी रह गई । मानों उनके विश्वमेंसे मैं एकदम अनावश्यक पड़कर दूर हो गया हूँ । तब मैं उसी हालतमें उन्हें छोड़ अपनेको लेकर वहाँसे चला आया ।

१८

एक सबेरे मैं घूमने निकला कि एक रॉल्सरॉयस गाड़ी मेरे दरवाजेपर आकर रुकी। मुझे विस्मय हुआ कि कौन ऐसे समय इस गाड़ीमें मेरे लिए आया है। इतनेमें देखता हूँ कि डा० असरानी उसमेंसे उतरे हैं। मानो साकार उल्लास हों। कोट खुला, टाई बाहर लहराती हुई। और उनके पीछे ही पीछे जो उतरे वे हैं राय साहब—। मैं देख पाया कि अन्दर कल्याणी भी बैठी हैं।

डाक्टरने आगे बढ़कर हाथ मिलाते हुए कहा—कहिए किधर ?

मैंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। कहा—यों ही घूमने। डाक्टरने परिचय दिया—आप हमारे मित्र राय साहब—। मैंने कहा—कृतज्ञ हूँ। दर्शन तो पहले भी पा चुका हूँ। राय साहबने मुझे अधिक अवसर नहीं दिया। मेरा हाथ लेकर झुकझोरते हुए कहा—जी हाँ, जी हाँ। आपके बारेमें अक्सर सुना पढ़ा करता हूँ।

डाक्टर साहबने दो बड़े बड़े लिफाफे मुझे दिये और कहा कि देखिए, आइएगा। जरूर तशरीफ लाइएगा।

मैंने कहा—चलिए। अन्दर तो चलिए। जरा बैठिएगा। राय साहब बोले—इस वक्त तो माफ करना होगा। अभी लम्बा चक्र है।

मैंने हँसकर पूछा—यह कैसा हुक्मनामा है ?

रायसाहब बोले—एक एंट-होम है ।....के प्रीमियरके सम्मानमें । आप जरूर आइएगा । बल्कि वक्तसे कुछ पहले आइए । मेरी कोठीके बराबर ही कोठी है । जी हाँ,—नई दिल्ली ।

मैंने कहा—शुक्रिया । लेकिन थोड़ी देर तशरीफ रख सकते —

पर ठहरनेके विषयमें राय साहबने सबकी ओरसे क्षमा माँगी ।

“ बिल्कुल न रुक सकिएगा ? ” कहते हुए मैं मोटरके दरवाजेतक बढ़ गया । कल्याणीने मुझे आते देखकर दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया ।

दरवाजेका हैंडिल घुमाते हुए मैं बोला—आप तो आइए ?

दरवाजा खुलते ही मुझे दीखा कि वैसे ही बड़े बड़े लिफा-फोंकी एक खासी संख्या कल्याणीके बराबर रक्खी हुई है ।

कल्याणी जवाबमें कुछ नहीं बोलीं ।

मैंने दुबारा कहा—आप भी नहीं आ सकिएगा ?

वह कुछ नहीं बोलीं ।

तब मैंने कहा—‘ अच्छा ’ और दरवाजा बन्द कर दिया ।

कल्याणी फीकी मुस्कराहटसे मुस्कराकर रह गई ।

इतनेमें डाक्टर और राय साहब मोटरके पास आ गये थे ।

मैं दरवाजेसे अलग हट गया ।

राय साहबने डाक्टरको कहा—बैठो, बैठो । चलो, बैठो भी ।

डाक्टर अन्दर बैठ रहे थे कि सबकी ओरसे राय साहबने मुझसे क्षमा माँगते हुए कहा—माफ कीजिएगा । हमने शायद

आपकी सैरमें हर्ज किया। खुशी होती कि हम ठहर सकते। पर सही मानिए अभी काफी घूमना है। खयाल न कीजिएगा। कहते हुए फिर हाथ बढ़ाकर मेरा हाथ हिलाया और सब लोग चले गये।

मैं अपनेको समारोहोंके अनुकूल नहीं पाता हूँ। रसीली बात ही करनी नहीं आती। इससे ऐसे अवसरोंपर स्वयं अपनेको मैं अरुचिकर हो आता हूँ। तब स्वभावतः दूसरोंको भी अरुचिकर ही हो जाता होंऊँगा। तो भी असरानियोंकी ओरमे दिये जानेवाले इस एट-होममें न जानेका अवकाश अपने लिए मुझे नहीं जान पड़ता था। इतनेपर एक बजेके लगभग आ पहुँचे मेरे पास कौन कि देवलालीकर।

बोले—डाक्टर साहबाने मुझे भेजा है कि आप पार्टीमें जरूर शरीक हों।

मैंने कहा—मैं अहसानमन्द हूँ। लेकिन मेरी शरकतमें शक होनेकी कोई उन्हें वजह मिली है ?

देवलालीकरकी शिष्टताको मैं आदर्श कह सकता हूँ। बोले—जी नहीं, शककी बात नहीं। फिर भी ऐतिहातन मुझे कहा कि मैं आपको याद दिला दूँ। उनका खयाल है कि आप भूल सकते हैं।

मैंने हँसकर कहा कि भूलनेमें मेरा अपना ही नुकसान है। जी नहीं, भूँझगा नहीं। आप विश्वास रखिए।

देवलालीकरसे कुछ देर तक इधर-उधरकी बात चीत होती रही। मालूम हुआ कि इन दिनों छोटे-मोटे कामोंके लिए

डाक्टर साहबा उन्हें याद फरमाती रही हैं। जी हाँ, सिनेमा हाउस भी पधारती रही हैं। जी, हाउस आपका ही है। सेवामें पास भेजू तो श्रीमान आ सकेंगे ? मुझे डराया गया है कि आपको इन चीज़ोंमें दिलचस्पी नहीं है। कोई शौक नहीं है। खयाल है, डाक्टर साहबा ही कहती थीं। जी नहीं, जी नहीं—कृपा आपकी है। मैं आभारी होऊँगा। दिनोंसे आपसे परिचय चाहता था। यह अनायास अवसर मिला। मैं तो खिदमतगार हूँ। इत्यादि।

मैंने कहा—डाक्टर साहबासे मेरा नमस्कार कहिएगा और कह दीजिएगा कि मैं आऊँगा।

पार्टीमें मैं कुछ देरसे पहुँचा। निमन्त्रितोंकी संख्या दो सौ तो होगी। बगीचेमें शामियाना था। पाँच-पाँच सात-सात कुर्सियोंके बीच मेज़ थी। बीचमें एक बड़ी खास मेज़ थी जिसपर पंद्रह-बीस चुने हुए अतिथि थे। मैं एक अलग-थलग मेज़पर जा बैठा और चाहा कि पहिचाना न जाऊँ। लेकिन लगभग अपने फलाहारसे छुट्टी पाकर चुका ही था कि देखता हूँ कि फिर देवलालीकर ! वह आये और बाँले—डा० साहबा आपको याद फरमाती हैं।

मैं बहुत संकुचित हुआ। तो भी गया। वहाँ पहुँचता हूँ कि एक कुर्सी झटपट लाकर कल्याणी और प्रीमियरके बीच रख दी गई। लाचार मुझे वहीं बैठना पड़ा। प्रीमियरसे मेरा परिचय कराया गया। उनसे मिलकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। ऐसा लगा कि प्रीमियर अभी लड़के ही हैं, अगरचें

उम्र पचाससे कम नहीं होनी चाहिए। चेहरेपर रेखा नहीं है। एक सौम्य ब्रीडा हल्के बादलोंसे छुनकर आई धूपकी मानिंद वहाँ खेलती दीखती है। बड़े सीधे-सादे। मानों अकारण भी क्षमाप्रार्थी होनेको उद्यत हों। थोड़ी बात करते हैं और वह बहुत धीमे। मुझे प्रतीत हुआ कि प्रीमियरपन इस व्यक्तिके लिए भोग नहीं, बोझ है। पुरस्कार नहीं, शायद दंड है। जैसे कि यह व्यक्ति चाहता हो कि यह भार ऊपरसे उतरे।

डाक्टर असरानी जहाँ तहाँ व्यवस्थामें लगे थे। वह बहुत व्यस्त थे उत्साह और तत्परतासे भरपूर। अभ्यागतोंकी अभ्यर्थना उन्हींपर तो थी। पर कल्याणी क्या उदास थीं? सभी ओरसे तटस्थ दीखती थीं। प्रमुख स्थानपर बैठी थीं, पर जैसे आसपासका ध्यान उन्हें नहीं था। अपनी ओर बड़े हुए हाथोंके लिए भी कुर्सीसे उठकर मिलनेके लिए अपना हाथ आगे नहीं करती थीं। अधिकसे अधिक वहीं बैठे बैठे दोनों हाथ जोड़-से देकर वह लोगोंकी अभिवन्दना स्वीकार कर लेतीं, अन्यथा तो मानों उनको बैठने तककी सुध न थी। जैसे वह वहाँ अपनेको निवाह भर रही थीं और नहींके बराबर बोलती थीं।

चाय-पानीके बाद अभिनन्दन-पत्र पढ़ा जानेको था। उसकी छुपी प्रति सबको बाँट दी गई थी। मुझसे कल्याणीने धीमेसे कहा—एडेस आप पढ़िएगा।

लेकिन मेरी समझमें नहीं आया कि मैं यह काम कैसे कर सकूँगा।

उन्होंने शान्तिसे पूछा—आप नहीं पढ़ सकेंगे ?

उनकी आँखोंमें अभियोग देखकर भी मैं नहीं कह सका कि यह काम मुझे प्रिय होगा ।

तब उन्होंने आकस्मिक और आत्यंतिक शिष्टाचारके साथ कहा—क्या आप जरा डाक्टर साहबको यहाँ बुला दीजिएगा ? बड़ी मेहरबानी होगी ।

मैं उस बेहद अदबके स्वरपर स्तब्ध रह गया । तो भी साहसपूर्वक कहा—देखता हूँ कि एड्रेस आपके सिवा दूसरेका लिखा हुआ नहीं है । इससे उत्तम हो कि आप ही पढ़ें ।

उन्होंने इसपर ध्यान नहीं दिया और उसी ठंडे अनुल्लंघनीय लहजेमें कहा—आप कृपा करेंगे और डाक्टरको बुला देंगे ।

इसके आगे मुझसे कुछ नहीं बन सका । समय कम था । उठकर व्यवस्थामें व्यस्तभावसे घूमते हुए डाक्टरको पकड़कर मैंने कहा—सुनिए, अभिनन्दन आप पढ़िएगा । मुश्किलसे पाँच मिनटका समय समझिए । एक जगह बैठकर इसे एक बार पहले अच्छी तरह पढ़ डालिए तो सुभीता होगा ।

डाक्टरने तत्काल बात मान ली । और वह एकांतमें बैठकर अभिनन्दन-पत्र पढ़ने लगे ।

अंतमें यथावसर डाक्टरने सब अभ्यागतोंको सम्बोधन करके प्रीमियरके प्रति अपना अभिनन्दन-पत्र पढ़कर भेंट किया ।

इस कामको डाक्टरने बहुत खूबसूरतीसे पूरा किया । अभिनन्दनकी भाषा जैसी आर्द्र थी वैसी तो उनकी वाणी

नहीं थी तो भी संकोच उस वाणीमें नहीं था ।

अभिनन्दन कृतज्ञताके भावोंसे मुझे भारी और भीगा मालूम हुआ । पर उसमें प्रीमियरकी राष्ट्रीय सेवाओंका ही उल्लेख था । राष्ट्रके वह कर्मठ सपूत हैं । भारतका अतीत ही नहीं, उनके कारण भारतका वर्तमान भी महान् है । देशका भावी इतिहास उन्हें याद करेगा । उनपर काव्य बनेंगे, गीत गाए जायेंगे । हम लोग सङ्कीर्ण स्वार्थोंमें रह रहे हैं । आपने सब तज राष्ट्र-हितका वरण किया है । आपका आदर्श हमें स्फूर्ति और प्रकाश दे । इत्यादि ।

प्रीमियरने आभारमें छोटी-सी वक्तृता दी । कहा कि आपके नगरके सम्भ्रान्त नागरिक असरानी-दम्पतिका मैं कृतज्ञ हूँ । श्रीमती असरानीको मैं बहुत कालसे जानता हूँ । श्रीमान् असरानीका परिचय पाकर कृतज्ञ हूँ । आप सब लोगोंके प्रेमका ऋणी हूँ । काँग्रेसी सरकारोंपर आप भरोसा न रखिए । स्वराज्य अभी दूर है । बीचमें जाने अभी क्या क्या हमें भेलना है । मंत्रित्वको आप ओहदा न समझें । जाने कब सब उलट-पलट जाय । कल हम जेलोंमें थे और सब साथी थे । आज कुछ लोग वजीर हैं और अफसर हैं और कुछ अब भी जेलमें हैं । लेकिन यह मायाका खेल है । कल हम फिर जेलोंमें हो सकते हैं । इसलिए प्रीमियरकी हैसियतसे मैं कुछ कहने योग्य नहीं हूँ । वह हैसियत ऊपरकी आँखोंके लिये है,— धूप-छाँहका खेल जैसा होता है । आप लोगोंके प्रेमका ही मैं मुस्तहक हूँ । वही मैं ले सकता हूँ । जो आदर आपने दिया

वह प्रीमियरको दिया होगा। मेरा हक उसमें नहीं है। डाक्टर और खास तौरपर श्रमिती असरानीका फिर मैं एक बार कृतज्ञ होता हूँ। इनके आतिथ्यसे आप लोगोंके दर्शनोंका सौभाग्य मुझे मिला। इत्यादि।

प्रीमियर ऐसे बोले जैसे शब्दोंकी उन्हें कमी हो। ऐसा लगता था कि बोलते बोलते एकाएक चुप न हो जावें। मानों कहीं भी वह टूटकर रुक सकते हों। उनकी बातचीतमें कोई गरमी नहीं थी। जो लोग उनसे हाथ मिलाने आये उनके सामने वह मुझे लज्जित दिखाई देते थे। उस व्यक्तिको देखकर एक विलक्षण स्निग्ध करुणा और आदरका भाव मुझमें हुआ।

पार्टी खतम हुई। पर कहा गया कि मैं अभी नहीं जा सकूँगा। पार्टीके अनन्तर उस कोठीके एक कमरेमें हम लोग गये। कमरेकी सजावट कम खर्चीली नहीं थी। वहाँ लगे चित्रोंकी रुचि यदि बहुत ऊँची नहीं थी तो यह दूसरी बात है, पर सब कुछ नया और कीमती और आधुनिक था। वहीं हम लोग कुछ देर बैठे। प्रीमियर तो पहलेसे भी अधिक थके हुए दीखते थे। बस, डाक्टरका उल्लास उस मंडलीमें एक उल्लास था। कल्याणी भी अपनी कुर्सीमें ऐसे बैठी थी कि जैसे रख दी गई हों। बस इतना भर बोलती थी कि उनके कारण हमारी बातचीतमें सरदी आनेकी वजह न रहे। रायसाहबकी खुशमिजाजीने अवसरकी रक्षा की। देवलालीकर मानों वहाँ हुक्म पाने और पूरा करनेकी प्रतीक्षामें थे।

प्रीमियरने झुककर पास बैठी कल्याणीको अँग्रेजीमें कहा—

कल्याणी, तबियत ठीक न हो तो जाकर आराम कर सकती हो । मेहमान यहाँ कोई नहीं ।

कल्याणीने उत्तरमें कह दिया कि नहीं, मैं बिलकुल ठीक हूँ ।

खैर, वह बैठक कुछ बहुत देर जमी नहीं और थोड़ी देर बाद मैं अपने घर आ गया । पार्टीमें जाकर मुझे कुछ समाधान प्राप्त हुआ, यह नहीं कह सकूँगा । रह रहकर मुझे प्रीमियर, कल्याणी और डाक्टर असरानीके चेहरोंका ध्यान होता था । डाक्टरका चेहरा ईर्ष्याके योग्य जान पड़ रहा था । इतना उल्लास, इतना आनन्द । कल्याणी मिट्टी-सी पीली थीं । शरीरकी किंचित् असमर्थता तो ठीक, पर इसके अतिरिक्त मन ही उनका खिला न लगता था । प्रीमियर वयःप्राप्त ऐसे बालककी भाँति दीखे जिसके सपने और खिलौने सब खो गये हैं, लेकिन जो जानता है कि वह वयःप्राप्त है, इससे दुखी नहीं दीख सकता । शिष्टाचारके नाते लाञ्छनातीत उनका व्यवहार था । सबकी बात आदरसे सुनते और जवाब उनका जितना संक्षिप्त उतना ही मीठा होता था । लेकिन मन जैसे उनका उनके पास नहीं था । जो था, कर्तव्य था । इसके अतिरिक्त जैसे दूसरी बातके लिए उनके पास जगह नहीं थी । बीज पड़ता है तो मिट्टी और पानीके संयोगसे उसमें किल्ला भी फूटता है । किल्ला फिर बाहिरकी ओर अङ्कुरित होता और पत्तियाँ देकर हहरा उठता है । ऐसे वह बड़ा होकर फूल और फल देता और अपने आसपास हरियाली उगा जाता है । इस आदमीकी स्निग्धतामें बीज पड़ा, तो क्या हुआ ? क्या वह किल्ला बन सका ?

अङ्कुरित होकर छाँहदार हरियाला वृक्ष वह हो सका ? शायद नहीं । पर शायद यह अच्छा हुआ । महाभाल हिमालय तो वृक्ष नहीं है । वृक्षको जड़ चाहिए । लेकिन आकाशकी जड़ कहाँ है ? वायु बहती है, धूप फैलती है । ये सबको मिलती हैं । पर ये जड़से बँधी है ? इसी तरह निःकांक्ष आतपका सन्नाटा और सौम्य प्रेमकी परिपक्वता उस पुरुषके चेहरेपर दीखती है । पर उसका लक्ष्य कोई बिन्दु नहीं है, वह अलक्ष्य रूपसे सबके लिए है ।

मुझे विस्मय हुआ कि राजनीतिमें ऐसे 'अहं'से रिक्त आदमीको कैसे स्थान मिल सका ? झुलसाती आगका तो वहाँ चिह्न भी नहीं है ! जैसे आग आई हो तो आकर फूस-तिनकोंको जलाती हुई ऊपरसे निकल गई हो । अब मानों भीतर जलने-लायक कुछ रहा ही न हो । ऐसा आदमी जिस राजनीतिको मिल सका और लौकिक स्पर्द्धाके कठिन धरातलको फोड़कर ऊपर भी आ सका वह राजनीति, मालूम होता है, सत्तासे भिन्न नीतिकी राजनीति भी है । नहीं तो यह व्यक्ति मानों सत्ताका आकांक्षी नहीं है, बल्कि उससे बचनेका ही आकांक्षी है । वह दूसरोंकी आँखोंमें नहीं आना चाहता है । अखबारकी मुखर ख्याति नहीं, वह तो एकांतके सहजवासकी मूकता ही चाहता है ।

मुझे ध्यान आया कि विलायतमें कल्याणी प्रवासिनी थी । यह व्यक्ति भी तब वहाँ प्रवासी था । दोनों उस विदेशमें क्यों मिले ? मिले, तो बिलगे क्यों ? पर कुछ होता है जो किया नहीं जाता । वह व्यक्तियोंके द्वारा होता है, पर उनके बावजूद होता है । मानवी विवेकसे बढ़कर किसी बड़े कारणसे वह

होता है । तभी तो कल्याणी नहीं स्वीकार कर सकी अपने ही हृदयका अर्घ्य । और यह व्यक्ति भी अपनी स्पर्धा नहीं जतला सका । दिया हुआ भी नहीं दिया जा सका और और लेनेवाला अपना लेनेका दावा भूल गया । दोनोंकी इकट्ठी कृतार्थता दोनोंके समन्व थी, पर वह कृतार्थता दोनोंमेंसे किसी ओरसे नहीं अपनाई गई । दोनों ओरसे स्वीकृतिपूर्वक अभावको ही अपना लिया गया । उसके बाद क्या हुआ ? परमात्मा ही जानता है, क्या हुआ । पर विलायत-प्रवासके उन दो प्रवासियोंको आज जाने कितने वर्ष बाद फिर मिलना मिला । कैसे रास्ते इन दोनोंने इस बीच तै किये । अलग रास्ते, अलग सवाल, अलग कर्तव्य, अलग दायित्व । आज दोनोंकी राहें अलग अलग भावसे चलती हुई इस बिन्दुपर किस लिये अचानक आ मिली हैं ? लेकिन मिलकर फिर अलग हो जावेंगी । मानों मिली हैं सिर्फ कटनेके लिए । समाप्तिके लिए नहीं, सिद्धिके लिए नहीं, पर इसलिए कि एक दूसरेको काटती हुई आरपार फिर आगे निकलती चली जावें । जीवनकी यही अतर्क्य गति है । दो बिन्दु, जान पड़ता है, सदाके लिए दो बनते हैं । बिन्दु हैं तब तक दो हैं । पार्थक्य उनमें अमिट है । इसलिए बिन्दु रहकर जो उनके बीच अनिवार्यतः धर्मरूप हो रहता है वह है बिज्जोह । अतः धर्म भोग नहीं है, वह त्याग है । दो सच्चे व्यक्तियोंके बीच स्वेच्छापूर्वक अपनाया गया त्यागमय बिज्जोह ही सत्य है । उस बिज्जोहमें ही स्नेहका निवास है । भोग एकदम गलत है, क्यों कि भोगमें स्नेहकी तृप्ति नहीं,

स्नेहकी समाप्ति है। स्नेह बिछोहमें ही जीता है, जलता है, पलता है। इससे स्नेहका सार है अप्राप्ति। भोगका सूत्र है त्याग।
‘ तेन त्यक्तेन भुंजीथाः ’।

उस सायंकाल मैं अपनेको सहसा उस दिनकी घटना और उसके मुख्य पात्रोंसे अपने मनको सहसा रिक्त नहीं कर सका। जाने क्या क्या सोचा किया, क्या क्या सोचा किया। उस रात काफी देरमें सो सका। देरसे सोया पर जल्दी उठ गया। उठकर अनुभव किया कि अब चित्त स्वस्थ है। कलकी बात दूर हो गई है। अब बुद्धि अपनेमें फँसी नहीं है, चलूँ, कुछ लिखूँ।

पर सामने अखबार पड़ गया। खोलता तो देखता हूँ कि एक सूचना है। लिखा है कि प्रीमियर यहाँ अभी कुछ रोज़ और रहनेवाले थे, लेकिन मालूम हुआ है कि वह आज शामको ही चले जावेंगे। तीसरे पहर वायसरायसे मुलाकत होनेके बाद कुछ बाधा न हुई तो शामकी अमुक गाड़ीसे उनके रवाना हो जानेकी खबर है। रात फिर खूनका दबाव उन्हें बढ़ गया था और नींद ठीक नहीं आई। आजका कार्यक्रम उनका स्थगित हो गया है। समझा जाता है, प्रान्तकी राजनीतिक परिस्थिति भी उनके जल्दी लौटनेमें कारण है। डाक्टरोंने हवाई जहाज़से सफ़र न करनेकी सलाह दी है।

पढ़कर मैंने अखबारको अलग रख दिया और कमरेमें टहलने लगा। प्रीमियरके प्रान्तकी राजनीतिक परिस्थिति मैं नहीं जानता। मैंने कामना की कि यह सच हो कि राजनीतिक

परिस्थिति ही उन्हें ले जा रही हो । मानो मैं कमरेमें टहलते हुए कदमोंके जोरसे अपने अन्दर यही धारणा कूट कूट कर मजबूतीसे बैठा लेना चाहने लगा कि एकदम राजनीतिक परिस्थिति ही उस आदमीको रख रही और चला-फिरा रही है । इसके अतिरिक्त उस आदमीकी जिंदगीमें कुछ नहीं है जो उसे यहाँसे वहाँ या वहाँसे यहाँ हटा सके । मेरी बहुत इच्छा है कि यही सच हो, दूसरा कुछ भी और सच न हो । और अखबारको मेज़पर आधा पढ़ा छोड़कर मैं अब कमरेमें टहल रहा हूँ और टहल रहा हूँ । मैं नहीं जानता कि आदमीको, सच, क्या वस्तु फिराती है, भटकाती और चलाती है ? वह क्या है जो आदमीको जिलाती है और जिसके बिना आदमी फिर निस्पन्द होकर मर भी जाता है ? दिलके अन्दरकी धक-धक् क्या है जो कभी नहीं थमती ? वह स्पन्दन क्या है जो कभी नहीं रुकता, हर साँसके साथ उठता है, गिरता है और फिर उठता है । खिंचाव क्या है ? यह सब क्या है ?—सचमुच मेरी लालसा है कि सब सरल हो जावे, रहस्य कुछ न रहे, और मैं कह सकूँ : ‘राजनीतिक परिस्थिति’ । लेकिन हाय, यही अगर कह कर छुट्टी पा सकता तो—

१९

और कुछ दिन निकल गए । एक रोज़ तीसरे पहर उनका ड्राइवर मेरे पास आया । बोला—आपको मेम साहब याद फ़रमाती हैं ।

मालूम हुआ कि दरवाज़ेपर मोटर खड़ी है। कल्याणी वहीं हैं। मैं गया तो पिछली सीटपर वह बैठी थीं। कहने लगीं कि मैं साथ चलूँ। चल सकता हूँ ?

मैंने जानना चाहा—क्यों, कहाँ ?

बोलीं—खास हर्ज न हो और आध घंटेका भी समय हो तो चलिए।

स्पष्ट था कि वह 'नहीं' न सुनेंगीं। इससे मैंने कहा—अच्छा, आ रहा हूँ।

वह हँसकर बोलीं—कपड़े किसके लिए बदलिएगा ? ऐसे ही न चलिए। अभी तो आते हैं।

क्या यह उनकी मुझे प्रगल्भता लगी ? लेकिन मैं उन्हीं कपड़ों साथ हो लिया। रास्तेमें बातों बातोंमें उन्होंने पूछा—मैं मूल रहनेवाला कहाँका हूँ, देहलीका ?

मैंने बताया—नहीं, एक दूर देहातका जन्म है।

बोलीं—फिर आप दिल्ली क्यों रहते हैं ?

मुझे इस सवालपर अचरज हुआ।

कहने लगीं—अपनी वकालतपर आप जैसा ध्यान देते हैं, मैं जानती हूँ। फिर दिल्ली रहते हैं तो क्यों ?

मैंने हँसकर ढालते हुए कहा—दिल्ली बुरी जगह नहीं है।

बोलीं—आपको अच्छी लगती है ?

मैंने कहा—अपनी जन्म-राशिसे ही वह राजधानी है।

बोलीं—पत्थर राजधानी है। आजकी राजधानी नई-दिल्ली क्या ऊपर और क्या भीतर पत्थर नहीं है ? खूबसूरती उसकी

पत्थरकी और गुर्ररकी है। पानी और घासकी ठंडक कहीं बिछी है भी तो उसके ऊपर तनकर मगुर्रर पत्थर गुर्राता दीखता है। नहीं ?

मैने कहा—यह तो कविता हुई। लेकिन आपको अवसर था कि आप इस पत्थरकी दिल्लीमें न आतीं।

बोलीं—जी नहीं, आप भूल न कीजिएगा। हम रुपयेके जीव हैं। दिल्ली हमें खान है। सब कहींसे रुपया यहाँ खिंचकर आता है। चतुरके लिए कौन जगह यहाँसे अच्छी होगी ? पर आप कहिए कि आपको दिल्ली नरक नहीं मालूम होती है ?

मै हँसकर बोला—देखता हूँ कि आप मेरी दिल्ली छुड़ाने पर उतारू हैं। आखिर बात क्या है ?

वैसे ही हँसकर बोलीं—चल तो रहे हैं। बात अभी आती है।

दस-बारह मील आगए होंगे। मोटर अब पक्की सड़कसे नीचे उतरी और कुछ दूर राह-वे-राह चली। थोड़ी देरमें फिर वह रुकी और कल्याणीने कहा—यह जगह देखिए। कैसी है ?

जगह तो दीखी ही। पर उसके कैसी होनेमें क्या अमि-प्राय है, सो समझमें नहीं आया। असलमें शुरूसे ही मुझे कुछ समझ न आ रहा था। जगह यों अच्छी ही थी। एक तरफ़ पहाड़ी, नीचे तीन ओर खुला मैदान। हरी घास न थी, न खेती। ज़मीन खुश्क और कंकरीली। तराईका

निशान नहीं । कँटीर और भरवेरीकी झाड़ियाँ जहाँ तहाँ फैल रही थीं । पर मकानोंमें बंद होकर रहनेवालोंके लिए धरतीका खुला फैलाव ही सुन्दर होता है । जो कहीं उसपर धानी हरियाली छाई हो और बीच बीचमें खिली सरसोंकी पाँतें हों और बयारसे सब ओर बिछी यह हरी-पीली चादर लहर-लहर लहरियाँ लेती हो, तब तो पूछिए क्या ।

बोलीं—वनमें पेड़ होने चाहिए । लेकिन क्या ज़रूर पेड़ होने चाहिए ? यहाँ पेड़ नहीं हैं, पर निर्जनता पूरी है । तपो-वनमें निर्जनता चाहिए, पेड़ हों या न हों । क्यों, आप क्या कहते हैं ? बड़े पेड़ों बिना तपोवन नहीं हो सकता ? फिर पेड़ उगाए भी तो जा सकते हैं ।

कल्याणीमें यही अनब्रूझ है । चारमें तीन हिस्से बात अन-कही रखकर सिर्फ एक हिस्सा कहेंगीं । उसपर समझेंगीं कि समझानेको काफी हो गया । मानो कि मेरे लिए अनकही तीन हिस्सा बात तो तय ही हो । बाकी एक हिस्सा कहनेका जो कष्ट किया जा रहा हो, वह भी यों ही जाने क्यों । अन्यथा तो उतना भी अनावश्यक ही हो । मैं जानता हूँ कि एक सम्बन्ध ऐसा हुआ करता है जहाँ बात मौख्यसे नहीं, मौनसे ही एकसे दूसरेको अधिक घनिष्टतासे प्राप्त होती है । शब्द वहाँ बाधा है । उससे बीचका अन्तर भरनेकी जगह और बढ़ ही जाता है । पर उन्हें मेरे प्रति कब वह सम्बन्ध समझनेकी इजाजत थी ? तब बात खोलकर क्यों नहीं कही जाती है ?—मैं अन्तर्यामी हूँ ? मनःपर्यय-ज्ञानी हूँ ? मैं कौन हूँ ?

मैंने जानना चाहा—मामला क्या है ?

बोलीं—जमीन यह चालीस एकड़ है । मैंने मालूम किया ह, करीब आठ हजारमें मिल सकती है । ऊपर दो और हजारमें बसने लायक एकाधा भोंपड़ा पड़ जायगा । अब कहिए, क्या कहते हैं ? सब आपपर है ।

मैंने विस्मित भावसे कहा—मुझपर क्या है ?

जवाबमें वह नाराज़ हो गई । बोलीं—मैं कुछ नहीं जानती, मुझे छुट्टी नहीं है । मुझे तो यहाँ दिल्लीमें ही गड़ना है । डाक्टरीसे छुटकारा मुझे नहीं मिलना । पर तपोवन मेरा सपना है, भारती तपोवन । सपना मुझे सपना रहेगा । पर आप हैं, तब मैं निराश क्यों हो जाऊँ ? क्या देखते हैं ? नहीं, आज मैं पागल नहीं हूँ । ठीक है कि मुझे दिल्लीमें ही मरना और गड़ना है । पर आप क्यों यहाँ जमकर नहीं बैठ सकते ? ‘ भारती तपोवन ’ आप हो सकते हैं । कोई विधान नहीं, पद-अधिकारी नहीं, विभाजन नहीं । सब आप ।—सुनते हैं ? सब आप । मैं दस हजार तो कर लूँगी । ज़ेब्र हैं, बेच दूँगी । दो बीमे हैं, भुना दूँगी । दस पूरे करके चैक आपको दे दूँगी । सुनते हैं, या आप सुनते भी नहीं हैं ? चैकसे आगे सब आप जानें । क्या है आपको ? क्या आप मेरी तरह हैं ? आप स्त्री हैं ? आप डाक्टर हैं ? आपपर किस्मतका शाप है ? क्या रोक है आपको ? मैं तो मशीन हूँ । कट-कट कट-कट रुपया बनाती हूँ । हर काम रुपया माँगता है । है न ? यह दुनियाका सच है । तब मैं रुपया बनाऊँगी

लाऊँगी, माँगूँगी, बटोरूँगी । और लाकर आपपर पटक दूँगी । आप होंगे तो भारती तपोवन हो जायगा । मैं आपको पा गई और ' भारती तपोवन 'को जनमा गई तो मर कर भी नहीं मरूँगी । आप देखते क्या हैं ? होश-हवास मेरे दुरुस्त हैं । बोलिए, आप क्या कहते हैं ?

मैं क्या कहता ? मैं नहीं जानता कि उनके मनमें उस समय क्या था । उन्होंने मेरी ओर आँख उठाकर पूछा— आप इन्कार करते हैं ?

मानों उन आँखोंमें था कि हिम्मत हो तो कीजिए इन्कार और—

मैंने कहा—क्या आप यह मानती हैं कि मैं और सब कुल्लुके अयोग्य हो गया हूँ, बस एक तपोवनके ही योग्य रह गया हूँ ? कहकर मैं हँसा ।

क्या मेरे हँसनेसे उन्हें आश्वासन प्राप्त हुआ ? जो हो, उनका चेहरा इतना सन्नद्ध न रहा । बोलीं—सच कहिए । मैं भी सच कहती हूँ कि अगर मुझपर शाप न होता तो मैं धन छोड़कर तन और मनसे आपके तपोवनकी ही हो जाती । पर धन कहाँ छूटता है ? धनसे फिर तन और मन भी अपना नहीं रह पाता है । फिर भी जब होगा दिल्लीसे भाग कर आपके इस बनमें आ रहा करूँगी, यह मेरा वचन समझिए । नहीं नहीं, डाक्टर नहीं, आश्रमवासिनी । बिल्कुल आश्रमवासिनी ।

उनकी बातोंमें हठात् दिलचस्पी लेते हुए मैंने कहा— ज़मीन यह बंजर है । इसको हरा-भरा बनानेमें कम रुपया और

कम शक्ति नहीं लगेगी ।

उत्साहसे बोलीं — बेशक नहीं । पर कौन कहता है कि रुपया हिंदुस्तानमें कम है ? कम नहीं है । ज़मीन तो आपने देख ली । अब चलिए, मैं बताती हूँ ।

कहकर उन्होंने मुझे मोटरमें बैठनेको कहा और वापिस चलीं ।

बोलीं—इस दिल्लीमें क्या कम रुपया है ? कम नहीं है । कम है कल्पना और कम है संकल्प । नई दिल्लीमें क्या करोड़ पर करोड़ नहीं लग गया ? मैं कुछ रुपयेवालोंको जानती हूँ । जानती हूँ कैसे उनके हाथ रुपया आता है और कैसे वह चला भी जाता है । मेहनतसे नहीं आता और मेहनतसे नहीं जाता । क्या वह रुपया इस आने-जानेमें भलाईको बढ़ाता है, जिन्दगीको बढ़ाता है ? विलायती डिगरीवाली मेरी डाक्टरी मुझे रुपयेवाले घरोंमें ले जाती है । सुनिए, एक करोड़पतिकी पुत्रवधू मेरे इलाजमें है । वधूकी नहीं कहती, पुत्रकी कहती हूँ । जवान उम्र है, पढ़े-लिखे हैं, समझदार हैं, सुन्दर हैं, स्वस्थ हैं । शौकीन भी हैं ही । शौकके सहारे उनके दिन कटते हैं । पर पके अभी नहीं हैं, और दिलके हरे और उदार हैं । सुन्दरके रूपमें सत्यके वह शैदा हैं, यद्यपि वह यह नहीं मानते । पढ़ते हैं, लिखते हैं और भोगमें रहकर भोगकी व्यर्थता जानने लगे हैं । सौन्दर्यपर जी उनका गया है, पर हाथ बढ़ाकर उसपर मुझी बाँधी है कि वह अँदरसे रीती ही खुली है, भीतर पकड़में कुछ नहीं ठहरा है । पर फिर भी

वह तो है ही जो उनमें कामना जगाता है । वही सौन्दर्य । अतः सुन्दर ही उनका सत्य है । मैं सुन्दर हूँ ? लेकिन वह मेरा आदर करते हैं । सदा अपनी गाड़ीमें मुझे ले जाते हैं और डाइव्ह करते हुए बराबरकी सीटपर बिठाते हैं । नहीं, युवककी भावनाको मैं गलत नहीं समझूंगी । वह सदा पवित्र है । उसमें स्वप्न मिला होता ही है । काम्य होकर वह निष्काम भी होती है । खैर, वह मुझे दीदी कहते हैं । बड़े सम्भ्रम और सम्मानसे मुझसे व्यवहार करते हैं । पत्नीके कारण उनका अधिकांश मुझसे अप्रकट नहीं है । वह युवक मुझे प्रिय हैं । सरल हैं, तुच्छता और वक्रता उनमें नहीं हैं । उनके हाथमें दो-चार हजारकी क्या कुछ गिनती है ? वह मुझे बहुत कहते और बहुत मानते हैं । फायडको मैं नहीं जानती । हो सकता है गहराईमें सब कहीं एक ही चीज़ हो । गहराई मैं नहीं जानती । पर सोचती हूँ कि क्या हर्ज है कि उनसे कह कर देखूँ कि लाइए, एक अच्छे कामके लिए मुझे पाँच हजार दे डालिए । शायद उनका संभ्रम यह सुनकर काफूर हो जाय । शायद सुनकर खुश हों कि उनको मेरी कीमत मालूम हो गई । शायद किसी आशामें मेरी बात वह पूरी भी कर डालें । पर फिर भी मैं क्यों न कह देखूँ ? जानती हूँ कि शुद्ध आदर्श नहीं जो उन्हें मेरी ओर लाता है । समझकी बातें सतहकी बातें हैं । पर मैं वह सब क्यों सोचूँ ? रुपया मिल सकता है तो क्यों न ले लूँ ? इसी तरह मैं सोचती हूँ कि रुपया और भी जमा किया जा सकता है । बोलिए, आपको कितना

चाहिए ? क्या देखते हैं ? मैं अपनेको कोई बेचने नहीं चल पड़ी हूँ । बस आप यह कहिए कि आप वहाँ बैठेंगे । तब मैं जाती हूँ और अभी अपने सब परिचितोंका लिखूंगी । कुछ हैं जिन्हें मैं जानती हूँ । लिखकर उनसे धन माँगूंगी । शर्म क्या है ? आखिर किस काम आ रहा है धनवालोंका धन ? वह मोरियोंमें ही तो जाता है । यहाँ लगकर वह क्या असलियतमें ही नहीं लगेगा ? बोलिए, क्या कहते हैं ? आप चुप हैं और मैं बड़ी आशासे आई हूँ । बोलिए बोलिए ।

उस नारीसे मैं हारा । बोला—मैं गिरिस्ती आदमी । अपने मुझे अपने हैं; पराये पराये हैं । अपना-पराया जिसका नहीं छूटा, वह क्या तपोवनके योग्य है ?

कल्याणी झुंझला आई । बोली—फिर किस योग्यको आसमानमेंसे उतार कर मैं ले आऊँ ? सोचा था कि एको पा गई हूँ । वही कहने निकलता है कि अयोग्य हूँ । अरे, तो अपनेको योग्य जाननेवाले किस शेखीबाजने कभी कुछ किया है ?—लेकिन जाने दो । सपना टूटनेको होता है ।

मैंने देखा कि उनकी आँखें कातर हो आई हैं । मानों सब कुछ उनसे छिना जा रहा है । सब कुछ, सब कुछ ।

यह देख कर मैंने कहा—योजना तो बनाइए । मैं सोचूँगा ।

सुनकर उनके चेहरेकी घटा दूर हो गई और धूप खिल आई । [यह कहना मैं भूला कि उत्साह-भरी यह बातचीत मेरे मकानपर ही आकर हुई थी] वहाँसे चलीं तो ड्राइवरको पीछे बिठाया, खुद उसकी जगह बैठीं । बोलीं—आज इतवार

है । अगले इतवारको मिलिए । तबतक बाहरके उत्तर भी आ लेंगे । सुनिए आप, कि भारती तपोवन होगा और आप याज्ञिक होंगे । सपना ही सच होता है । सपना नहीं तो क्या यह आँखों दीखती दुनिया सच है ? यह मटमैली दुनिया ?— नहीं, जिन्होंने सपनेको सच किया है, वे ही जीए हैं । शेषका जीना भी जीना है ?

मैं उनके उत्साहपर प्रसन्न हुआ और चलते समय सहर्ष मैंने प्रणाम किया ।

पर इस बार उन्होंने हाथ जोड़कर मुझे नमस्कार नहीं किया । बल्कि बाँधे हाथको स्टीयर व्हीलपर ही रहने देकर दाहिने हाथकी उँगलियोंको माथे तक लाकर उन्होंने इसतरह मुझे अभिवादन दिया कि जैसे यह देश विलायत हो और वह विलायतकी ही कुमारी हों—तरुण, निर्द्वंद्व, डैने खोलनेको उद्यत पक्षीके समान ।

२०

इतवारसे पहले रोज़ डाक्टर असरानी आ गए । खिन्न थे और चिन्तित । उनके मनपर बहुत बोझ मालूम होता था । आकर वह मुझपर अपनेको खोल चले । बहुत जल्दी जल्दी उनको बोलना पड़ रहा था । एकके ख़तम होने तक दूसरे वाक्यको रोके रखनेमें उन्हें कठिनाई होती थी । खुद सवाल करते और खुद उनका जवाब देते थे । स्पष्ट उन्हें कष्ट था, इतना कि धैर्यसे अधिक । उन्हें समझ न आता था कि कैसे

क्या किया जाय ।

वह क्या चाहती हैं ? मुझे बताती क्यों नहीं कि क्या चाहती हैं ?—मैं अयोग्य हूँ ? अच्छी बात है, मैं अयोग्य हूँ । मैं मानता हूँ । अगर वह चाहती हैं कि मैं टल जाऊँ, तो मैं इसके लिए भी तैयार हूँ । मैंने अपनेको योग्य नहीं माना । फिर रोज़की झकझक क्यों ? आत्म-सम्मान सबमें होता है—कम या अधिक । चुनांचे मुझे कभी गुस्सा आ गया है । गुस्सा मुझे अक्सर आ जाता है । उसमें अनकहनी कह जाता हूँ, अनकरनी कर जाता हूँ । पर क्या उसका रंज मुझे नहीं होता ? गलती पीछेसे लगती है, और अकेलेमें अपने दोषोंपर विचार जाता है । दोष मुझमें हैं, बहुतेरे हैं । लेकिन अब क्या हो सकता है ? मैं एक हद तक ही अपनेको बदल सकता हूँ । मैं हूँ तो साथ दोष भी हैं । मैं पूछता हूँ, विवाहको हम तोड़ सकते हैं ? हाँ, तोड़ भी सकते हैं । पर फिर बालकोंका क्या होगा ? इससे नहीं तोड़ सकते । होनहारसे लड़ा कब तक जाय ? आखिर तो समझौता ही चलेगा । क्या रोज़ आपसमें भीकते ही रहा जाय ? ज़िन्दगी ऐसे नरक बन गई है । क्या तमाशा है, क्या मज़ाक है ! मैं परेशान हूँ, हैरान हूँ । हैरान हूँ कि वह अपने मनकी साफ़ कहती क्यों नहीं हैं ? मैं गुस्सेमें भभक लेता हूँ और चलो, मनका गुबार निकल जाता है । लेकिन वह तो गुस्सा भी नहीं करती । कुछ कहती नहीं, बोलती नहीं ।— गुमसुम, गुमसुम । बताइए, तब मैं क्या करूँ ? यही न कि मैं काला मुँह कर जाऊँ ? अब दो रोज़से फिर वही

हाल । सेहतका खयाल नहीं । न दवा लेंगी, न कुछ । पड़ी हैं अलग थलग, कि जोगिन हों । दिन ऐसे हैं कि तन्दुरुस्ती का खयाल रखना चाहिए । नहीं तो आगे बिगाड़ हो सकता है । स्त्रीका यह दूसरा जन्म समझिए । सृष्टिका भी क्या क्रम है !—आप क्या कहते हैं, उन्हें अपना खयाल नहीं करना चाहिए ? अब तो बल्कि दोहरी जिम्मेदारी है । वही नहीं, एक जीव उनके साथ और है । लेकिन मैं हैरान हूँ, परेशान हूँ । आखिर चारा भी तो बताया जाय कि क्या हो, मैं क्या करूँ ? मैं बकता हूँ, भीकता हूँ । डर रहता है कि हाथ-छोड़ बैठूँ । क्योंकि पीछे मुझे पछतावा हो आता है । आप तो जानते हैं । आप चल कर उनसे कहिए । कहिए, समझाइए । मैं,—नहीं नहीं, मैं कुछ नहीं । मैं, सच, कुछ नहीं कहता । मुझे क्या मालूम था कि—। हम आखिर दोनों समझदार हैं । बाल पकनेको आए । झगड़ा कबतक चलेगा । कैसे ऐसे ज़िन्दगी निभेगी ? बच्चे हैं, उनकी खातिर तो—। लेकिन वह हैं कि चुप । सब बातोंमें चुप । जैसे मुझसे एक बात करनेकी रवादार न हों । आखिर यह तमाशा क्या है ? क्या, जनाब, मैं आपसे पूछ सकता हूँ कि इसका मतलब क्या है ? मामला क्या है ?

इस तरह डा० असरानी काफी देर कुछ कुछ कहते रहे ।

मेरे मनमें सच्ची सहानुभूति हुई । मैंने कहा—बात क्या है ?

बोले—बात ! यही तो पता चले कि बात क्या है ? मुँह है कि हरवक्त सूजा हुआ । आखिर कुछ समझमें भी तो आये ?

मैंने कहा—योंही कुछ तबियत खराब होगी। मन है, कुछ देर बिगड़ा भी रहा तो क्या। बदली आती है, और साफ हो जाती है।

बोले—मं भी जानता हूँ। तबियतके फिट्स हैं। लेकिन मुसीबत तो यह है कि मैं जानेवाला हूँ।

अनायास भावसे मैंने पूछा—जा रहे हैं, कहाँ ?

“ जा नहीं रहा, जाना पड़ रहा है। क्या मुझे फ़िक्र नहीं है कि दिन ऐसे हैं और वह अकेली रहेंगी ? पर मैं जल्दी आनेकी कोशिश करूँगा। कोशिश ही कर सकता हूँ। बाकी कामका रुख़ है। पर यहाँ तो सब इंतज़ाम है ही। आप हैं, और लोग हैं। उन्हें कहिए—”

“ कब जा रहे हैं ? ”

“ जब भी चल दूँ। ”

“ तो क्या दो ही चार रोज़में ? ”

“ सोचता तो हूँ। ”

कुछ रुक कर मैंने आशा प्रगट की कि किसी ज़रूरी काम यानी बिज़नेससे ले जा रहे होंगे।

असमंजसमें मुस्कराते-से बोले—जी हाँ !

अनन्तर उन्होंने बतलाया कि दुनियामें पैसा कितनी ज़रूरी चीज़ है। पैसेके मित्र, पैसेका ईश्वर। जी हाँ, ईश्वर भी पैसेका ही है। आप सच मानिए। ज़िन्दगी इतनी गुज़र गई है। ऊँच-नीच कितने देखे हैं। सब तजुरबेका एक सबक है। वह यह कि पैसा नहीं है तो तुम्हारा कुछ नहीं है। आप तो खुद

जानते हैं। इस बार मैंने सोचा है कि पाँच-सात साल लग कर कमाई कर ली जाय। बाकी ज़िन्दगी फिर शान्ति और धर्ममें व्यतीत की जाय। इसलिए मैं जा रहा हूँ। अभी तो बदनमें दम है। मिहनत हो सकती है। बुढ़ापा आनेपर फिर क्या होगा। इस कालमें जो जमा-पूँजी हो जायगी वही आगे काम आयगी। मेरा इकलेका क्या है। मर्द आदमी हूँ, अकेले तनको दो मुट्ठी नाजकी क्या कमी है। लेकिन खी है, बच्चे हैं, इज्जत है। उन्हींके लिये तो मैं हूँ। अपनी मुझे जरा फिक्र नहीं। लेकिन बालबच्चोंके खातिर घर बसाना पड़ता है, हैसियत-आबरू बनानी पड़ती है। पर मैं परेशान हूँ। शादीसे पहले मैं था परिन्देके मानिन्द। तब कब सूझी थी कि कमाना होगा, या ये दिन देखने होंगे। लेकिन खैर, ज़िन्दगी है। मैं बचता नहीं हूँ, डरता नहीं हूँ। इंसान क्या नहीं कर सकता? मुझे अपनेसे उम्मीद है। पर इंसानसे किसीको हैवान समझ लिया जाय तो क्या हो सकता है? आज हमारी ज़िन्दगी कोई ज़िन्दगी है! इस चालसे क्या हम दस सालमें भी आराम और इज्जतके दिन पा सकेंगे? सोचता हूँ कि दो लाख काफी होगा। दो नहीं तो ढाई। उतना होनेपर दुनियाका खटाराग मैं छोड़ दूँगा। आप ही देखिए। बच्चोंकी परवरिश है, शिक्षा है। उन्हें इन्सान बनाना है। है कि नहीं? इसमें रुपया चाहिए। क्या खयाल है?

मैं उनके प्रवाहमें बाधक नहीं हो सकता था। अनुमति दी—
अवश्य रुपया चाहिये।

बोले—लेकिन किसके लिए? अपने लिये नहीं, बालबच्चोंके

लिये । मेरी ज़िन्दगी उनकी ज़िन्दगी है । मेरी कमाई उनकी प्रतिष्ठा है । पर मैं दिनरात पिस रहा हूँ और मुझे क्या मिलता है ? कुछ नहीं, रहम तक नहीं । मुझसे बात तक नहीं की जाती । क्या मैं इस लायक भी नहीं हूँ ? आखिर क्या बात है ?

मैंने डाक्टरको सँभाला । जलपानका आग्रह किया । इधर उधरकी बातें चलाई । धीरे धीरे उनका मन हल्का हुआ । मुझे मालूम हुआ कि उनके मनमें शङ्काएँ हैं, अनुमान हैं । उनसे मन उनका काफी उद्विग्न और दुखित रहता है । लेकिन यह नहीं कि उनमें आत्मालोचनकी वृत्ति ही नहीं है । मेरे प्रति उस दिन वह कुछ इतने खुल आये कि अपने जीवनकी दबी-ढँकी बातें भी खोलने लगे । मैंने उन्हें रोकना भी चाहा, पर क्या आत्म-संतापके रसकी उन्हें ज़रूरत थी ?

मैंने उन्हें कहा कि अपनेको हीन माननेकी आवश्यकता नहीं है । लेकिन मैंने जो क्रमशः सुना, मैं मानूँ कि, उससे मैं दंग रह गया । वह प्रसंग दोहरानेके लिये नहीं है । पर उससे मालूम हुआ कि इस विवाहके लिए कितनी होशियारी उन्हें खेलनी पड़ी । जो आज पत्नी हैं विवाहसे पूर्व वह क्या प्रान्तभरकी रत्न न थीं ? अच्छेसे अच्छा सम्बन्ध क्या उन्हें दुर्लभ था ? फिर भी मैं सफल हुआ तो—पर वह इस कथासे प्रसंगान्तर है, जाने दीजिए । किन्तु मुझे वह सब सुनकर अत्यंत कष्ट हुआ । लेकिन देखता हूँ कि डाक्टर जिसको अपनी कारगुजारी मानते आए थे उसपर उन्हें अनुताप भी है । अब वह उन्हें अपनी महिमा नहीं, लज्जा मालूम होती है ।

मैंने कहा—डाक्टर, यह सब आप कैसे कर सके ?

वह लज्जित थे । बोले—उस समय जाने मुझपर क्या सवार था । इस विवाहमें अकृतकार्य रहनेकी कल्पना भी मुझे असह्य थी । आप कहेंगे कि अपनी भावी पत्नीके विषयमें झूठे लाल्छनका प्रचार मैं ही किस प्रकार कर सका । लेकिन किसी और तरह मेरी कामना पूरी नहीं हो सकती थी ।—पर विवाहसे भी क्या मनोरथ मेरा पूरा हुआ ? ओ, नहीं । पाना चाहा उसको पा नहीं सका । शायद उल्टे बिगाड़ ही सका ।

उस समय डाक्टरके प्रति मेरे मनमें बहुत ही हार्दिक भाव हो आया था । मैंने कहा—डाक्टर, अब आप बाहर कहीं जाते क्यों हैं ? दवाखानेकी आदमनी काफी है । उसमें सन्तोष रखकर गृहस्थीका पालन कीजिये । देखिए, मेरी आय तो आपका पाँचवाँ हिस्सा भी नहीं होगी ।

पर संकल्प और सदिच्छासे प्रकृति कदाचित् प्रबल ही होती है । बोले—गृहस्थके लिये अर्थोपार्जन ही मुख्य है । घरका तो सब कुछ चलता ही है । पर एक बार कमाई अच्छी कर ली गई, तो सदाको निश्चिन्तता हो जायगी । मैं सब गिरिस्तीके लिये ही तो सोचता हूँ ।

बात उनकी झूठ न थी । नकशेमें ब्यौरे पूरे थे । पाँच सालमें ढाई लाख रुपया अलग बचा लेनेकी उनकी स्कीम थी । उसके गणितमें त्रुटि न थी । एक लाखमें यहाँ दिल्लीमें खासी एक कोठी हो सकती है । बाकीमें आगे गाड़ी चलती रहेगी । बात अच्छे इन्वेस्टमेण्टकी है । वह सब उन्हें मालूम है । इतना

होनेपर ऊँचे समाजमें प्रतिष्ठा बन जायगी । सोचिये, पत्नीकी योग्यताके योग्य तो प्रतिष्ठा मुझे बनानी ही चाहिए । स्पृहणीय गृहिणी, द्रव्यकी सुविधा और ऊँचे लोगोंका संग । उस अवस्थामें कल्याणीके मनका अवसाद भी दूर हो जावेगा । अभी तो मिहनत उन्हें बहुत पड़ती है और जी बहलानेका अवकाश काफी नहीं मिलता । इसीसे चित्त भटक आता है । आर्थिक सम्पन्नता परलोक-सेवाकी विविध प्रवृत्तियोंमें भी वह भाग ले सकेंगी । उधर उनकी बहुत भावना है । ऐसे तबियत बहली रहा करेगी । क्यों, वकील साहब ?

नकशा सब ओरसे सही है, इस बारेमें डाक्टरको किंचित् सन्देह न था । कलख एक यही थी कि कल्याणीका मन नहीं मिलता है,—जाने वह क्यों अनमनी रहती हैं । तो भी डाक्टर को विश्वास था कि भविष्य उनका उज्ज्वल है, बादल कहीं है तो खिर रहेगा और जीवनमें फिर सुनहरी धूप ही रह जायगी । एक बार पैसा—

मैंने हृदयसे जतलाया कि उनकी आशामें मैं साथ होना चाहता हूँ, आगे जो भवितव्य हो । कहा कि उस ओर मैं आऊँगा । मुझपर भरोसा,—मुझपर कृपा है ।

मैं आशा करना चाहता हूँ, डाक्टर मेरे पाससे गये तब अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ-चित्त थे । लेकिन मेरे चित्तका स्वास्थ्य—?

मुझे साथ ले चला । अन्दर, अन्दर, उसके भी अन्दर, कोठीके पार, एकदम पीछे एक नीची छतकी कोठरीकी चिक तनिक हटाते हुए आदमीने कहा—मैम साहब !

“ कौन है ? ”

“ बाबूजी—”

इतनेमें मैं अंदर आ गया । कल्याणी लेटी हुई थीं । तकियेसे सिर उठाकर उन्होंने मुझे देखा । माथेपर धोतीको ठीक किया । कहा—आइए ।

कोठरी दस × पन्द्रह फुट होगी । दायें तरफकी दीवारसे लगा एक तख्त बिछा था । उसपर चटाई, चटाईपर कम्बल और कम्बलपर मृगछाला । सिरहाने तकियेपर सिर रखे एक अण्डी चादर लिये वह लेटी थीं । बराबर एक छोटी मेज थी । पास एक अकेली कुर्सी । कुर्सीकी सीट तख्तेकी थी और उसपर गद्दी नहीं थी । पीछे दीवारसे लगी एक बैच पड़ी थी जिसपर पाँच-छ आदमी बैठ सकते थे । तख्तके बराबर दीवारमें पत्थरकी बिन-किवाड़ अलमारी लगी थी । उसमें नीचेके खानेमें कुछ किताबें, एक-आध कापी और कागज फैले थे ।

मैंने बढ़ आकर प्रणाम किया । कल्याणी उठ बैठने लगी थीं । मैंने कहा—कष्ट न कीजिए । लेटी रहिए, लेटी रहिए ।

उठते उठते वह लेट रहीं । बोलीं—क्षमा कीजिएगा ।

लेकिन मैं यह क्या देख रहा था ! सब छोड़कर इस उजाड़ कमरेमें आ रहनेकी क्या बात है ? मैंने कहा—कहिए, कैसी तबियत है ?

बोलीं—ठीक है ।

जब देखा कि इतने-से जवाबपर मैं आश्वस्त नहीं हूँ तो कहा—यह कमरा सबसे शान्त है । और तो कोई बात नहीं है ।

“ इधर शायद आप दवाखाने नहीं गई हैं ? ”

धीमेसे बोलीं—नहीं ।

“ तब तो शायद तबियत खराब है । दवा ली ? ”

“ नहीं । ”

“ यह तो वाजिब नहीं है । डाक्टर साहबको चिन्ता है कि उन्हें जाना पड़ रहा है और आप अपनी तबियतके बारेमें उदासीन हैं । ”

वह चुप ही रही ।

“ कल घर आए थे । शायद जल्दी जा रहे हैं । आप दवा क्यों नहीं लेती हैं ? ”

चुप ।

“ डाक्टर साहबकी राय है कि आपको दवा लेते रहना चाहिए । ”

तब बोलीं—डाक्टर साहब जल्दी जा रहे हैं ?

“ मालूम होता है, वह तैयार हैं । आपका खयाल ही उन्हें रोक रहा है । ”

सुनकर वह चुप रही ।

वह इस करवट लेटी थीं । बाँह दोनों चादरसे बाहर थीं । बदनपर बस एक धोती थी । थोड़ी देर चुप नीची आँखें किये वह लेटी रहीं । फिर आधी उठ, तकियेपर कोहनी

टेक पीछेकी तरफ घूमकर अलमारीमें रक्खी कापी उठाई और मेरे सामने करते हुए बोलीं—इसमें चार जवाब हैं। देखिए।

मैंने कापीको हाथमें लेकर रख लिया। उसे खोला नहीं और उनकी ओर देखता रहा।

मुझे सप्रश्न देखकर वह और भी कोहिनियोंपर बल देकर उठी और बोलीं—दस खत लिखे थे। चारका जवाब आया है। दोने अपनी स्थिति लिखकर आर्थिक सहायतामें असमर्थता जतलाई है। दोने पूछा है कि अपनी योजना मैं लिखकर बतलाऊँ।—बाहरकी यह खबर है। यहाँकी यह कि करोड़पतिके पुत्र मुझे नई मोटर खरीद देनेको तैयार हैं, जो भी फोर सीटर मॉडल मैं चाहूँ। पर रुपया लेकर क्या करूँगी, यह उनकी समझमें नहीं आता। कुछ कीमती ज़ेवर उपहारमें देनेकी तो वह पहलेसे ही सोच रहे थे पर 'भारती तपोवन' बगैरहकी वह कोई बात सुनना नहीं चाहते।—”

कहकर कल्याणी मेरी ओर देखने लगीं।

मैं चुप रहा।

रुककर फिर बोलीं—बाहिर जिन्हें लिखा उनमें चार राजा हैं, दो राय बहादुर, दो बड़े नेता। सभी सम्पन्न। मैं कालिजमें थी तब मेरी पहिली कविता-पुस्तक निकली। फिर प्रान्तमें एक कम्पीटीशनमें अव्वल आई। राजाओंकी मुझपर तभीसे कृपा है। वह कहते रहे हैं कि उन्हें मैं किसी प्रकारकी सहायताका गौरव दूँ। उनमें दोका जवाब नहीं आया, दोका जो आया वह मैंने बता ही दिया है। [यहाँ थोड़ी देर

रुककर वह शान्त रहीं । फिर बोलीं—] मैं पूछती हूँ, यह क्या है ? अपमान नहीं है ?

फिर वह रुक रहीं । अनन्तर बोलीं—मेरा अपमान करनेका किसीको क्या हक है ? मैं कब किससे कुछ माँगने गई ? हरेकने पचासों बार मुझसे कहा कि लो, लो । मैं लेने बढ़ी तो वे यह बताना चाहते हैं कि मैं याचक हूँ, हीन हूँ ! यह क्या है !

क्रोध उनका क्रमशः बढ़ता जा रहा था । बोलीं—धन किसीका गौरव नहीं है । हो तो वह लाञ्छन हो सकता है ! गौरव है तो उसके देनेमें । मैं लज्जित नहीं हूँ कि मैंने उन्हें मौका दिया कि वे चाहें तो अपना धन दे डालें । अगर कोई इतना कमीना है कि वह दूसरेको कमीना समझे तो मैं क्या कर सकती हूँ ?

मुझे विचित्र मालूम हो रहा था । तपोवन उनका सपना ही तो है । उसपर कोई दूसरा निष्ठावर होनेको उत्साहित न हो तो इसमें अपना अपमान माननेकी क्या बात है ? लेकिन कल्याणी सचमुच अपमानकी चोटसे घायल मालूम होती थीं ।

मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया तो अन्तमें बोलीं—आपके तपोवनके लिए मैं जो कर सकती थी, किया । नतीजा आपको बता दिया । बोलिए, क्या कुछ और भी कर सकती हूँ ? कहिए ।

मैंने कहा—जाने न दीजिए उस बातको ।

वह फिर चुप हो आई और कुछ रुककर सहसा बोलीं— मैं एक बात जानना चाहती हूँ । आप मेरा विश्वास करते हैं ? मैंने कहा—आप कह क्या रही हैं ?

लेकिन जैसे उन्होंने सुना भी नहीं । कहती रहीं—प्रशंसा नहीं, सराहना नहीं, विश्वास । कोई है जो विश्वास रखता है कि मुझमें आत्मा है ? विश्वास, जो अडिग हो । जो मान सके कि सब बुराईके नीचे मुझमें कुछ अच्छाई भी है । है कोई जिसे मेरी भलाईमें भरोसा हो ? मैं खी हूँ, पढ़ी-लिखी हूँ, सबसे बोलती हूँ, अच्छे कपड़े पहिनती हूँ, कोठीमें रहती हूँ, मोटर चलाती हूँ । और जाने क्या क्या करती हूँ । लेकिन मैं कहती हूँ कि मुझमें आत्मा है । नहीं दिखती, पर वह है । पूछती हूँ कि कोई है जो उस नहीं दीखनेवाली मेरी आत्माको ही देखे और कहे कि मैं वही हूँ । अगर नहीं, तो मैं जानना चाहती हूँ, क्या चीज़ मुझे गिरनेसे रोक सकती है ? फिर मुझे पापसे बचानेको क्या रह जाता है ? कौन रह जाता है ?

मैंने कुर्सी कुछ आगेको खींची । मैं नहीं समझ सका कि मुझे क्या कहना और करना चाहिए । मैंने चाहा कि मैं सान्त्वना दूँ, और थपकी देकर कहूँ कि आराम कीजिए ।

लेकिन मुझे मौन देखकर वह बोलीं—नहीं, तबियत मेरी खराब नहीं है । मैं बिलकुल ठीक हूँ । [कहते कहते वह सीधी बैठ गई ।] मैं एक बात पूछती हूँ कि—प्रेम क्या है ?

प्रश्न था, पर क्या उसमें उत्तरकी अपेक्षा थी ? रुककर फिर खुद ही बोलीं—प्रेम और नहीं, वह विश्वास है । प्रेममें कामना नहीं हो सकती, उसमें इतनी अपूर्णता ही नहीं हो सकती ! सच्चे प्रेमका दूसरा नाम है विश्वास । कोई है जिसका अब भी

मुझपर विश्वास है ? विश्वास, मेरे देवत्वमें विश्वास ! जो मुझसे स्फूर्ति ले, जिसकी मैं स्वप्न हूँ । क्या कोई ऐसा है ? नहीं है तो जीवन मेरा क्यों वृथा नहीं है ?

फिर मेरे देखते देखते मानों वह अपने ही उत्कर्षसे गिर आई । बोलीं—एक और पत्र है । दिखाती हूँ ।

पीछे मुड़कर उन्होंने एक किताब उठाई और उसमेंसे लिफाफा निकाला । उसपर सरकारी मोहर थी । उसके अन्दरका कागज खोलते वक्त कड़कड़ करके बजा । सीधा करके कल्याणीने उसे मेरी ओर बढ़ाया । मैं लेते भिन्नका ।

बोलीं—पढ़िए ।

मैंने पढ़ा । पत्र प्रीमियरका था । गिनतीके शब्दोंमें अंग्रेजीमें लिखा था कि ‘ प्रिय, पत्र पाकर मैं आभारी हूँ । जिंदगी बहती है, समय चल रहा है । उसका कोई क्षण नहीं टिकता । हम कुछ क्यों चाहें ? मैं गाँधी-सेवा-सङ्घका सदस्य हूँ । अपना कहनेको मेरे पास एक पैसा नहीं होना चाहिए । मुझे लिखते दुख है कि मुझसे कुछ आशा नहीं रखी जा सकती । तुम्हारा सप्रेम—। ’

पत्र पढ़कर मैंने एतिहाससे उसकी तह की और हिम्मतके साथ आँख उठाकर कल्याणीकी ओर देखा ।

अण्डी चादर एक ओर कन्धेसे कुछ नीचे खिसक रही थी । एक खदरकी धोती तनपर थी । वह किसी तरफ नहीं देख रही थीं । मानो देख ही नहीं रहीं थीं । पर आँखें तो खुली थीं ।

तह किया हुआ वह खत मेरे हाथमें रह गया । मैं उनकी

और उसे बढ़ाना भी भूल गया,—कुछ ऐसी विस्मृत-सी उनकी दृष्टि थी ।

थोड़ी देर शान्ति रही । अनंतर बोलीं—तो क्या वह अपने और मेरे अविश्वासपर जीना चाहते हैं ?

आगे बोलीं—नहीं, मैं एककी भी विश्वासकी पात्र नहीं हूँ । मैं—

उत्तरमें बिना एक शब्द कहे मैं चुपचाप बैठा था । वह अपना वाक्य पूरा नहीं कर सकी कि इतनेमें बाहरसे खट्-खट् जूतोंकी आहट आई । मानों उन पैरोंके चलनेमें इरादा और उत्साह हो । पल पीछे ‘ कल्याणी, कल्याणी ! ’ कहते हुए डाक्टर साहब कमरेकी देहलीपर आ गये । आये, आते ठिठके, और चिक हटाकर बोले—क्यों क्या बात है ? ओः, वकील साहब, नमस्कार !

माथेकी साड़ीको कल्याणीने दो अङ्गुल आगे ले लिया । मैं कुर्सीसे उठा । डाक्टर अन्दर आते हुए बोले, ‘ बैठिए, बैठिए ’ और स्वयं कल्याणीके पास तख्तपर जा बैठे ।

“ क्यों, कैसी तन्त्रियत हैं ? देखूँ—”

हाथ बढ़ाकर कल्याणीकी कलाई ली, देखा, और हाथ अलग करके बोले—कलसे तो ठीक है, क्यों ? बस कलसे बाहर हवादार कमरेमें इंतजाम होगा । देखी वकील साहब आपने यह कोठरी । मरीज न हो तो कोई मरीज हो जाय । और आप बताइए, इनकी इस हालतमें इन्हें तनको कष्ट देनेका हक है ?

कल्याणीने अपनेको पूरी तरह चादरमें कर लिया था ।

धीमी बोलीं—सुनो, क्या फिर बाहर जा रहे हो ?

डाक्टर बोले—एँ-हाँ । सोचता था कि तुमसे आज कहूँ, कल कहूँ । जाना होता ही दीखता है । पर—हाँ, राय साहब साथ आए थे । ज-रा-आ, बाहिर कमरे तक चल सकोगी ?

कल्याणीने हठात् मुस्कराकर कहा—राय साहबको क्या वहाँ अकेले छोड़ आए हो ?

बोले—कह तो आया हूँ कि मैं अभी आया । चलो, वकील साहब भी हैं । चलिए, आप भी चलिए ।

मैं साथ चलनेको उद्यत हो गया, पर कल्याणीने कहा—मुझे कहाँ ले चलोगे ?

“ बाहर, गोल कमरेमें । सबके पसन्दका काम अच्छा होता है तुम जानो । ”

कल्याणीने कहा—मेरा माथा दुखता है । मुझे रहने दो ।

डाक्टरने चिंतापूर्वक कहा—तो लेट जाओ, लेट ।

कहते कहते उठकर सिरहानेका तकिया ठीक करनेको वह बड़े । किन्तु तभी सहसा खड़े होकर पुकारा—किसना ! डोरी ! रामलाल !—अरे कोई है ? सुना, कोई है ? ए—हाँ, डोरी, तुम देखो दूसरा तकिया लाओ । वह हमारे पलंगका बड़ावाला !

डोरी (नौकर) दरवाजे तक आया था कि तकिया लाने वापिस चल दिया ।

डाक्टरने मुड़कर मानो उन्हें हाथोंमें ले लेते हुए कल्याणीको कहा—लो, अब लेट जाओ ।

कल्याणीने कुछ प्रतिवाद नहीं किया और मुस्कराकर

बोलीं—तो छोड़ा, लेट जाऊँगी ।

डाक्टरने कहा—नहीं नहीं, लेट जाओ । यहीं रहना है तो पलङ्ग क्यों नहीं मँगवा लेतीं ? ये नौकर बदमाश—। आराम बड़ी चीज़ है । आराम यानी आधा इलाज । तनका और मनका एकदम आराम, कम्पलीट रेस्ट ।

डोरी तकिया ले आया ।

पहलेके तकियेको ज़ोरसे जमीनमें फैंककर डाक्टरने नये तकियेको सिरहाने लगा दिया और आप्रहपूर्वक कल्याणीको लेकर उसके सहारे लिटा दिया । फिर बोले—अरे, वह मनसद तो ले आ । खड़ा क्या देख रहा है ?

कल्याणीने मुस्कराकर कहा—रहने भी दो ।

डाक्टरने इस व्यर्थ बातको नहीं सुना और नौकरसे कहा—सुनेगा नहीं ? या खड़ा देखा करेगा, मनसद लेकर आ । फौरन ।

मनसद आ गई और तकियेके पीछे कल्याणीके सहारेके लिये उसको ठीक ठीक लगा दिया गया । कल्याणी कृतज्ञ थीं ।

डाक्टर बोले—अच्छी बात है । तो मैं फिर कुछ चीजें यहीं लिए आता हूँ । सबकी पसन्दकी चीज़ तुम जानो शुभ होती है ।

डाक्टर गए और एक नौकरके साथ कई बण्डल सामानके लेकर आये । सामान फर्शपर रख दिया गया और खुद भी पंजोंके बल वहाँ फर्शपर बैठ कर एक एक चीज़ खोलने और दिखाने लगे ।

पहले एक पीतलका बहुत बड़ा थाल उन्होंने सामने किया ।

उसपर बारीक बेलबूटोंका काम हो रहा था। बीचोंबीच उसके एक नाचता हुआ मोर बना था। ‘ बोलिए, क्या खयाल है, कितनेका होगा ? मुझे तो यही पसन्द आया। यह दूसरा देखिए। चीज़ यह भी अच्छी है। [दूसरा थाल खोलकर दिखाया]। दोनोंमें कौन-सा रक्खा जावे ? कीमत नहीं, आर्टका सवाल है। कीमत न पूछिए। बस यही तो बात है। चीज़ अक्सर कीमतसे पसन्द की जाती है। लेकिन टेस्ट और चीज़ है, कीमत और चीज़ है। क्यों कल्याणी, मोरवाला पसन्द है या यह दूसरा हंसवाला ? मैं तो कहता हूँ कि मोर खूब है। पंखोंपर जो लाल-नीले-बैजनी रंगोंमें चाँदके निशान हैं, क्या हूबहू उतरे हैं कि वाह !’

इसी तरह हाथीदाँतकी एक बड़ी-सी किशती निकाली। बीचमें पतवार लिये आठ मल्लाह उसे खे रहे थे। किनारेपर राजा-रानी बैठे थे। सामने उनके एक गायिका सितार सँवार रही थी। उस किशतीका काम खूब था। किसी भी भव्य ड्राइङ्ग रूमकी शोभा उससे बढ़ सकती थी। बोले—क्या राय है ? मुझे तो चीज़ पसन्द है। जी हाँ, एक चीज़ है ! आखिर दिल्लीकी कारीगरीका आला नमूना है कि मजाक ! इत्यादि।

दो चाँदीके टीसेट थे। एकपर सुनहरी काम था और लाल-नीले रंगमें अँग्रेजीमें खूबसूरत मोनोग्राम बना हुआ था।

“ बोलिये वकील साहब, कौनसा रक्खा जावे ? कल्याणी, तुम तो कुछ कहती ही नहीं। किसपर आँख ठहरती है, बतलाओ। ”

इसी तरह और चीजें थीं। मुरादाबादी दो बड़े कीमती किस्मके थाल थे; कुछ गिलास, रकाबियाँ, कटोरियाँ। बाकी बण्डलोंकी तरफ इशारा करके बतलाया कि इनमें खुश्क मेवा है। दो सेर फी किस्म। पहिले ख्याल हुआ पाँच पाँच सेर ले चलें। लेकिन फिर सोचा कि फिजूलखर्ची क्यों? पिश्ता दो किस्मका अलग एक एक सेर है। नमकीन और सादा छिला हुआ। वह उनमें मिठाई है। फल मैं नहीं लाया। फल तो सीधे पार्सलसे खाना कर दूँगा। जिस रोज़ चलूँगा उसी रोज़ ताजा फलोंका पार्सल हो जायगा। मेवा और बाकी चीजें साथ जा ही सकती हैं। हाँ, कुछ बढ़िया किस्मकी खदरकी खरीद बाकी है। अब तो सुनते हैं खादीमें एकसे एक खुशनुमा डिज़ाइन मिलती है। कल्याणी, तुम उठो तो साथ चल कर खरीद लिया जावे। मैं खादी जानता ही नहीं। एँ, इस लायक तबियत नहीं है? तो अच्छी बात है। जाने दो। हाथीदाँतकी किश्ती रायसाहबके दीवानखानेसे आई है। उन्होंने उसके बारेमें खास तौरपर पूछा है कि पसंद है? ओः, तबियत ठीक नहीं है तो जाने दो, सो जाओ। अरे तो बाहिर ड्राइंग रूमके बराबरवाले कमरेमें तुम्हारा इन्तज़ाम कर दिया जावे तो कैसा हो? वहाँ पलङ्ग डल जावेगा। और सब किस्मका आराम—

डाक्टरने उत्तरकी कुछ प्रतीक्षा की। कल्याणीकी ओरसे कुछ सम्मति नहीं मिली तो बोले—तो अच्छा, जैसा तुम कहो। हाँ, तो क्या कहती हो? कौनसा रक्खा जावे? पहिला या दूसरा?

कुछ देर उत्तरकी प्रतीक्षामें ठहर कर फिर स्वयं बोले—
पहला ? ऍ, पहला न ? अच्छी बात है, तो पहला ही सही ।
और थाल ? मोरवाला ? क्यों ?—यह लो, खास चीज़ तो
मैं भूल ही गया !

कहकर डाक्टरने कोटके अन्दरकी जेबसे एक रिस्ट-वाच
और सोनेकी चैन निकाली । उसे लिए उठकर तख्तपर आ
बैठे और कल्याणीके मुलाहिजेके लिए पेश की । बोले—
पसन्द है ? बात यह कि लेडीज़ डिज़ाइन तो हो नहीं सकती ।
प्रीमियरके वाइफ़ तो हैं नहीं । इसलिए यह जेंट्स डिज़ाइन है ।
कैसी लगती है ? बोलो, बताओ ।

कल्याणीने धीमेसे कहा—अच्छी है ।

डाक्टर सुनकर बहुत खुश हुए । बोले—यह ठीक । तुम्हें
पसन्द है तो फिर क्या । सब सामान पास, क्यों ? सब सामान
पास है ना ? अच्छा । तो राय साहब वहाँ अकेले होंगे ।
सोचता था कि उन्हें यहीं बुला लूँ । लेकिन खयाल हुआ कि
इस कमरेमें वह क्या आवेंगे ।—ऍ, थकान मालूम होती है ?
अच्छी बात है । लो, आरामके साथ सो जाओ ।

मैं शायद इस दृश्यको न्यायपूर्वक नहीं दोहरा रहा हूँ ।
डाक्टर अपनी पत्नीके आरामके प्रति बहुत चिन्तातुर मालूम
होते थे । वह पत्नीको अपनी प्रसन्नतासे प्रसन्न और उत्साहसे
उत्साहित करना चाहते थे । उन्हें यह निर्दय लग रहा था
कि इतनी सब नई नई चीज़ें लाई जावें, इतनी बातें की जावें,
तब भी मन अनमनाया रहे । उनकी मुद्रा कह रही थी कि

बताइए, मन बहलानेके लिए और क्या किया जा सकता है ?
 भाँति भाँतिकी चीजोंसे फर्श गुलज़ार था और डाक्टर इन
 वस्तुओंमें सबकी प्रशंसा और दिलचस्पीको स्वाभाविक मानते
 थे । कल्याणीका अनुत्साह क्या अन्याय न था ? मेरी बात,
 —तो मैं तो उस समय वहाँ अनावश्यक प्राणी हो गया था ।
 मानों मेरा समर्थन जाबतेसे अधिक ध्यानकी वस्तु न थी ।

अन्तमें बोले—लो, मैं जाता हूँ । तुम आराम करो ।

कहकर उन्होंने जितने बगडल बन सके उठा लिए और
 मुझसे कहा—आप भी चलिएगा ?

मैं कुछ उत्तर दूँ कि कल्याणी बोलीं—नहीं, यह अभी बैठे हैं ।

मैंने कहना चाहा कि मैं भी चलूँ ही, लेकिन डाक्टर
 बीचमें ही बोले—हाँ हाँ, आप बैठिए । उन्हें अकेली छोड़ना
 नामुनासिब है । उनकी तबियत ठीक नहीं है । और देखिए
 वकील साहब, इनसे कहिएगा कि बाहरके कमरेमें उनके लिए
 मैं पलंग डलवाए देता हूँ । आखिर इसमें क्या हर्ज है ? कमरा
 हवादार है और वहाँ किसी दूसरेका दखल न होगा ।

मैं सुनता हुआ खड़ा रह गया ।

डाक्टर फिर मुड़कर एकाएक मुझसे बोले—आपकी राय
 उस मोरवाली चीज़के लिए है ना ? और वह किस्ती, और
 टी सेट, और घड़ी ? बोलिए, बोलिए ।

मैंने कहा—आपकी पसन्दपर क्या मुझे नुक्ता-चीनीकी
 जुरअत हो ?

डाक्टरने कहा—शुक्रिया ।

उन्होंने खुशी प्रकट की कि सबकी राय उनकी रायके मुताबिक बैठी और वह कुछ बण्डल सँभालते हुए चले गये। दुबारा आए, तिबारा आए, और इस तरह सब सामान स्वयं ले गए।

कुछ देर कल्याणी ज्यों की त्यों लेटी रहीं। फिर बोलीं— देखिए, यह कपड़ा है, वह पानी है। एक भीगी पट्टी बनाकर मुझे दीजिएगा तो।

मैंने कहे अनुसार किया।

पट्टी लेकर उन्होंने माथेपर रखी और बोलीं—अब आप जा सकते हैं।

मुझे जानेको कहकर वह उठकर बैठ गई और बार बार माथेपर पट्टीको दबाने लगीं।

मुझे सामने देखकर बोलीं—नहीं। अब आप जा सकते हैं। अब कुछ नहीं।

पर अब कुछ क्या नहीं, सो मैं कैसे जानता। मैं तो उस समय मानों वहाँ उपलक्ष्य रूप भी न था। उनके लक्ष्यकी सीधमें मानो मैं कुछ भी न रह गया था। थोड़ी देरमें माथेकी पट्टी उनके हाथमें आ गई और उनकी उँगलियाँ उससे खेलने लगीं।

सहसा बोलीं—एक थे। वह अब गाँधीके हैं। वह और किसीके कुछ न होंगे। आशासे वह बाहर रहेंगे। इससे अब क्या शेष है? नहीं, अब कुछ नहीं।

सुनता हुआ मैं बैठा रह गया। उस घड़ी जैसे सब ठहर

रहा था । समय सुन्न हो गया था । कोई न बोल रहा था । मैं जाने कल्पनाओंकी किन संभावनाओंमें खोया हुआ था कि—

“ लाइए वह मुझे दीजिए । ”

यह सुना तो मैं जागा । तह किया हुआ वह पत्र मेरे हाथमें था । देखा, बाँह बढ़ाकर वह उसीको माँग रही हैं । पत्र मैंने दिया और वह शिथिल भावसे उनकी हथेलीमें रख गया । फिर उस हथेलीसे वह कहीं अलग नहीं गया । हथेली उसपर आधी मुड़कर उल्टी तख्तपर टिक रही । वह हठात् बोली—
लेकिन गाँधीका वह रास्ता है ?—नहीं, वह नहीं है ।

“ कहती हूँ, वह नहीं है ”, मानों अपने ही शब्दोंको सुनकर वह तत्परतासे भर आई । “ जो सूखा है, हृदयके रससे हरा-भरा नहीं है, वह गाँधीका नहीं है । गाँधीकी तपस्या मुस्कराती है । निजकी ओर ही वह दुर्द्धर्ष है, शेष सब ओर वह स्निग्ध है । प्रीतिकी मुस्कराहट जहाँ नहीं वैसी कर्मकी तपस्या गाँधीकी नहीं । गाँधी-सेवा-संघमें क्या स्नेहको सुख दिया जायगा ? यह तो गाँधीको गाँधीवादमें भून देना होगा । इससे बड़ी अकृतज्ञता—गाँधीकी हत्या और क्या हो सकती है ?

रुककर फिर बोली—गाँधी-सेवा-संघ ! संघसे पास कराऊँ तब ‘ भारती तपोवन ’ को वह समझेंगे ? नहीं तो अपनी कोमलतासे वह डरेंगे ? अरे, गाँधीके गुलाम बनकर उस मुक्त पुरुषकी आत्मापर अपना लांछन डालते संघको शर्म नहीं आती ? मैं जानती हूँ गाँधीका स्वप्न, जानती हूँ गाँधीकी प्रेरणा । तपोमय था हमारा अतीत, तपोमय है हमारी संस्कृति । वही

हमारा संदेश । वैसा ही होगा भारतका भविष्य, यदि वह भारतीय होगा । गाँधी-सेवा-संघमें होकर प्रांतके प्रधानमंत्री अपने और मेरे अविश्वासी बनेंगे ? अपने प्रेम और मेरे तपोवनके स्वप्नको छूत समझकर बचाना चाहेंगे ? फिर भी मानेंगे कि वह गाँधीके रास्तेपर हैं ? अपनेको कुचलकर उसके शवपर संघकी सदस्यताको वह उज्ज्वल बनाना विचारेंगे ? और उस सबके बाद मुझे कहेंगे कि मैं नहीं हूँ स्वतन्त्र !

कहेंगे कि मैं निरीह रहूँगा, क्योंकि मैं संघका सदस्य हूँ ! ओः, यह विडंबना है ! मैं जानती हूँ । मैं जानती हूँ । अपने इंकारपर गाँधी भारतका स्वराज्य भी नहीं लेंगे । गाँधीकी तपस्या लीला है, लीला तपस्या है । सबके रास्तेपर वह सबके साथ हैं । वह पति हैं, पिता हैं, सब हैं । लेकिन उन मेरे गाँधीके भक्तकी मर्जी यही न है कि मैं अपनी राहपर अकेली रह जाऊँ ? अकेली ! अकेली ! ! अकेली ! ! !

कहते कहते दोनों हाथोंमें उन्होंने अपना मुँह ढँक लिया और तकियेपर औंधा सिर डालकर पड़ रही ।

मुझे कुछ न सूझा । जैसे असहाय होऊँ । मुँहसे एक शब्द भी निकला और उस समय पातक लगा । हल्की हल्की सिसकी सुनाई पड़ रही थी । मैं अवश बना बैठा था । क्या करता ? क्या न करता ? शनैः शनैः मुझे बोध हुआ कि जीवनके ऐसे पवित्र क्षणोंका साक्षी तो बस एक अन्तर्यामी ही हो सकता है, बाहरी दृष्टि अशुचि है, अनधिकृत है । मालूम हुआ कि मुझे चले जाना चाहिए । मैं चला जाऊँगा । चला

ही जाऊँगा । कुर्सीसे उठा । असमंजसमें कुछ काल खड़ा रहा । तकिएपर मुँह डाले वह झुकी थीं । झुकीं सिसक-सी रही थीं । मैं चल पड़ा । बेआहट, बेमालूम । पर बाहर न जा पाया कि सुना—ठहरिए ।

ठिठका, ठहरा । देखा, चेहरा आँसुओंसे धुल रहा है । पोंछनेकी चेष्टा नहीं की गई है । आँखें फूल आई हैं । पर एक सौम्य गाम्भीर्य भी मैंने देखा । मानों व्यथाका विष बह गया है और विषादका रस ही शेष रह गया है ।

थोड़ी देर बाद वह बोलीं—राजनीतिमें वह अपरिग्रही हैं । सभामें नम्र हैं । वह महात्माके अनुयायी हैं । मैं उन्हें दोष न दे सकूँगी । पर वह प्रधानमंत्री हैं, इसीपर मैं दुःखी हूँ । मंत्रित्वकी सत्ता,—इसे वह क्यों अपने ऊपर आने दे सके ? मेरे डाक्टर जाएँगे, रायसाहब जाएँगे । उनके मंत्रित्वकी बदौलत लाखों रुपया ये लोग अपनी जेबोंमें भर लाएँगे । मेरा मन कहता है कि वह भोले अपरिग्रही इनके हाथों खेल रहेंगे । खेल रहेंगे ? पर हाय ! यह—यह भी अगर मैं मान सकती ?—तभी कहती हूँ कि वह क्यों प्रीमियर बन गये हैं ? बने हैं तो कोमल क्यों हैं ? मेरा मन कहता है कि प्रीमियर मुझे लेकर इस विषयमें कमजोर होनेसे नहीं बच सकेंगे । मैं क्या करूँ ?....
....नहीं, आप जाइए नहीं । मुझे कहने दीजिए । मेरा त्रास—

कहते कहते रुक आई थीं । फिर बोलीं—सोचती हूँ, मेरे पेटका बच्चा क्या मेरी सब विडंबना भेल लेगा ? चलो, अच्छा है । आपको एक बार कहा था कि आप मेरे बच्चेका खयाल

रखिएगा । अब वह जरूरत न होगी । बच्चा न होगा ।

मैंने कहा—आपका चित्त ठीक नहीं है । और सुनिए, डाक्टर नहीं जाएँगे ।

कल्याणीने मेरी ओर देखकर भयंकर स्थिर वाणीमें कहा—
आप उन्हें रोकेँगे तो—मेरी जान लेंगे ।

मैंने तब जोरसे कहा—तो उन्हें जानेका हक क्या है ?
क्या वह अपराध नहीं है ?

उसी थिरतासे बोली—अपराधमेंसे आत्मा प्राप्त होती है ।

मैंने कहा—अन्याय न कीजिए । डाक्टरको आपकी हालत
मालूम नहीं है । नहीं तो वह न जाते ।

बोली—क्या यह स्वार्थ न होगा कि अपने लिए मैं उन्हें
उनके मनके मार्गसे रुकने दूँ ?

मैंने कहा—उनसे अपराध बनने देनेकी इच्छामें भी स्वार्थ
हो सकता है । खैर, वह जो हो, मुझसे सुनिए कि डाक्टर
नहीं जावेंगे ।

कल्याणी एकटक मुझको देखती रहीं । फिर धीमे धीमे एक
एक शब्द वह बोली—उनको जाने ही दीजिए । रुककर वह
असन्तुष्ट रहेंगे । होना है वह तो होगा । पर अगर मेरे पति
अपना मतलब मेरे उपलक्ष्यसे प्रीमियर द्वारा साध सके, तो उन
दोनोंहीके लिए मुझे क्या प्रायश्चित्त करना होगा, यही
मुझे सोच है ।

मैं उनकी इस भावनाको ठीक तरह समझ नहीं पाया ।
बोला—आप स्वास्थ्यलाभ तो कीजिए ।

कहने लगीं—मै ही तो दोषकी जड़ हूँ । मेरे ही कारण डाक्टरको धनकी चाह है । और मेरे ही कारण अगर होंगे तो प्रीमियर कर्तव्यच्युत होंगे । ओः, मुझे क्या प्रायश्चित्त काफी होगा ?

इस धरातलपर वह बात कर रही थीं कि राय साहब डाक्टरके साथ उधर आते दिखाई दिये ।

राय साहबने आकर अत्यंत चिंता-भावसे तबीयतका हाल पूछा । दिलासा दी, समझाया । मधुर और अनुभवसे भीगे वचन कहे । कहा कि सोच करनेकी बात नहीं है । वह खुद डाक्टरके साथ जावेंगे और वहाँ सब व्यवस्था देख कर पाँच-सात रोजमें लौट आवेंगे । यह तन हमारे पास ईश्वरकी धरोहर है । इसकी अवज्ञा कैसे की जा सकती है ? इसको कष्ट नहीं दिया जा सकता । यह आपका मैं बचपन कहूँ तो क्षमा कीजिएगा, श्रीमती । आप खुद समझदार हैं । आपके कारण डाक्टर भी कष्ट पा रहे हैं । अभी मुझसे कह रहे थे कि मैं ऐसी हालतमें कैसे जा सकता हूँ । आप जानती हैं कि मौका हमेशा नहीं आते । आता है तब, चूका वह गया । अभी मौका है । नया सूबा बना है । इससे वहाँ नया सेक्रेट-रियट खड़ा करनेके सिलसिलेमें बहुत बिल्डिङ्गका काम होना है । एक नया नगर ही बसानेकी स्कीम समझिए । एक-डेढ़से दो करोड़का काम है । उसमें कई लाख बचनेकी गुंजाइश है । यह मौका जाने दिया तो फिर पड़तावा ही हाथ रहेगा । शुरूमें रुपया मैं लगा ही दूँगा । ठेकेदारीका मेरा पचीस

सालका अनुभव आपका है । काम नफेका है । यह मेरा वादा समझिए । नफेमें मुझे साझा नहीं चाहिए । नफा सब आपका ही है, क्योंकि मैं आपका हूँ । रुपया लगाऊँगा, इसे भी मेरी रियायत न गिनिए । मूल व्याजके साथ मुझे मिल जाय, तो इससे अधिक मुझे क्या चाहिए ? मेरी सलाह है, आप फिक्र न करें । हफ्तेभरमें तो मैं लौट ही आता हूँ । फिर क्या बात है ?

कल्याणी उत्तरमें कुछ बोली नहीं । नीचेकी ओर देखती रहों । सारा बदन उनका चादरसे ढका हुआ था और माथेके ऊपर धोती इतनी आ गई थी कि आँखें आधी ढँकी थीं ।

“ देखता हूँ कि आपको आरामकी जरूरत है ।—डाक्टर साहब, इनको आराम करने दीजिए । लेकिन यह कमरा एकदम ठीक नहीं है । इन्सैनिटरी, अन्हाईजिनिक । डाक्टर, बाहरके कमरेमें इन्तजाम क्यों आप नहीं कराते हैं ?—वकील साहब, आइए, आप भी चलिए । अधिक बातसे इनको कष्ट होता है । ”

कहकर राय साहब चल पड़े । डाक्टर भी उनके साथ हुए और मैं भी अनिश्चित भावसे उठा ।

कल्याणीने बिना ऊपर आँख उठाये धीमी वाणीसे कहा— वकील साहब अभी आएँगे ।

राय साहब सुनकर कुछ बोले नहीं, बढ़ ही गए । उनके चले जानेपर कल्याणीने घूँघट पीछे किया । सहज सौम्य भावसे बोलीं—कष्टके लिए मुझे क्षमा कीजिएगा और सब भूल जाइएगा । मैं अब आपको रोक्कूँगी नहीं । आग जाइये ।

यह कहते हुए वह गद्गद् हो आई ।

मैंने हठात् कहा—यह क्या, यह क्या ?

बोलीं—मेरे कसूर सब माफ कीजिएगा ।

मैंने कहना चाहा कि आप—

बोलीं—आप तो जानते हैं । व्यक्ति कितना विवश है ।
उसके अपराध भी उसके नहीं हैं ।

मैंने देखा कि वह उत्तरमें मुझसे कुछ न सुनेंगीं । उनका
प्रणाम स्वीकार कर अंतमें मैं अन्यमनस्क भावसे चला आया ।

मैं याद करता हूँ कि वह विदा कितनी भीगी थी । पर
वही अन्तिम भी होगी इसका अनुमान होता तो—

उपसंहार

इतना सब मैंने क्यों लिखा ? नाहक । नहीं, अब नहीं लिखूँगा । समय ही नहीं । कल्याणी अब नहीं रहीं । यह मैं ही क्यों जानूँ कि वह कैसे मरीं ? मौतमें जाननेको है भी क्या । मुझे खबर दुपहर बाद मिली । मालूम हुआ कि सबेरे तीन बजे उन्होंने पुत्रको जन्म दिया । तब स्वस्थ थीं, प्रसन्न थीं । लेकिन कुछ देर बाद अचानक हृदयकी गति बन्द हो गई । अचानक ? शायद—। चलो, खेल समाप्त हुआ । श्रीधरने बताया कि अभी दुपहर तो लोग अन्त्येष्टिसे लौटे हैं । मुझे सूचना मिली तब सब निपट चुका था । एक तरह मुझे इसका सन्तोष है । और यद्यपि लिखनेको बहुत सफे काले किये जा सकते हैं, पर आगे एक शब्द भी नहीं लिख सकूँगा । नहीं, मुझे रहने दो । मैं रहना चाहता हूँ ।



